उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

मानविकी विद्याशाखा

हिन्दी साहित्य का इतिहास और आदिकालीन कविता (भाग 1)

प्रथम सत्र (MAHL 501)

विशेषज्ञ समिति

प्रो.एच.पी. शुक्ला निदेशक, मानविकी विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल	प्रो. लक्ष्मण सिंह बिष्ट 'बटरोही' निदेशक, महादेवी वर्मा सृजन पीठ, रामगढ़, नैनीताल
प्रो एस.डी.तिवारी. विभागाध्यक्ष, हिन्दी गढवाल विश्वविद्यालय, गढ़वाल	डा. जितेन्द्र श्रीवास्तव हिंदी विभाग, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विवि.दिल्ली
प्रो.डी.एस.पोखरिया विभागाध्यक्ष, हिन्दी कुमाऊं विश्वविद्यालय नैनीताल,	प्रो.नीरजा टंडन हिन्दी विभाग कुमाऊं विश्वविद्यालय नैनीताल,

पाठ्यक्रम समन्वयक, संयोजन एवं संपादन

डा.राजेन्द्र कैड़ा असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाएं विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल	**डा.शशांक शुक्ला** असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाएं विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल

हिन्दी साहित्य का इतिहास और आदिकालीन कविता MAHL 501

इकाई लेखक	इकाई संख्या
डा. राजेन्द्र कैड़ा असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल	1,2,3,4
प्रो. विजय कुलश्रेष्ठ 22, मोतीमगरी उदयपुर, राजस्थान	5,6,7,8

कापीराइट©उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

संस्करण: जून, 2012 पुनर्संस्करण - 2022

प्रकाशकः निदेशालय, अध्ययन एवं प्रकाशन

mail : studies@uou.ac.in

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी ,नैनीताल -263139

ISBN - 978-93-84632-67-0

उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय,हल्द्वानी

प्रथम सत्र हेतु –

हिन्दी साहित्य का इतिहास और आदिकालीन कविता भाग एक

MAHL 501

खण्ड – 1साहित्येतिहास लेखन	**पृष्ठ संख्या**
इकाई – 1 इतिहास एवं साहित्येतिहास का संबंध	1-17
इकाई – 2 हिंदी साहित्येतिहास लेखन की परम्परा	18-39
इकाई – 3 हिंदी साहित्येतिहास लेखन की समस्या एवं नामकरण की समस्या	40-56
इकाई – 4 हिंदी साहित्येहिास लेखन : काल विभाजन की समस्या	57-74

खण्ड – 2आदिकाल : परिचय एवं स्वरूप	**पृष्ठ संख्या**
इकाई – 5 हिंदी साहित्य के आदिकाल का उद्भव एवं विकास	75-85
इकाई – 6 हिंदी साहित्य का आदिकाल : स्वरूप एवं प्रक्रिया	86-105
इकाई – 7 हिंदी साहित्य की आदिकालीन कविता में रस, छंद, अलंकार योजना	106-119
इकाई – 8 हिंदी साहित्य की आदिकालीन कविता का भाषिक विवेचन	120-137

प्रथम सत्र हेतु - MAHL 501

हिन्दी साहित्य का इतिहास और आदिकालीन कविता - भाग एक

इकाई 1 इतिहास एवं साहित्येतिहास का संबंध

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 इतिहास: अर्थ एवं स्वरूप
1.3.1 इतिहास : परिभाषा
1.3.2 इतिहास : विज्ञान अथवा कला
1.4 इतिहास लेखन की पाश्चात्य परम्परा
1.5 इतिहास लेखन की भारतीय परम्परा
1.6 साहित्येतिहास : अर्थ एवं स्वरूप
1.6.1 साहित्येतिहास : अवधारणा एवं परिभाषा
1.7 सारांश
1.8 शब्दावली
1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.10 संदर्भ ग्रंथ सूची
1.11 सहायक पाठ्य सामग्री
1.12 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

हिंदी साहित्य की संपूर्ण प्रक्रिया को समझने के लिए यह जानना बहुत जरूरी है कि हिंदी साहित्य के समग्र इतिहास की पृष्ठभूमि को समझने के उद्देश्य को पूर्ण करने वाली पहली इकाई है। प्रस्तुत इकाई के पूर्वार्द्ध में इतिहास की प्रक्रिया एवं उसके स्वरूप का विश्लेषण किया गया तथा साथ ही इतिहास की पाश्चात्य एवं भारतीय परम्परा का संक्षिप्त परिचय भी दिया गया है।

इकाई के उत्तरार्द्ध में साहित्येतिहास के स्वरूप एवं उसकी प्रक्रिया का विवेचन प्रस्तुत किया गया है । साथ साहित्येतिहास की पाश्चात्य एवं भारतीय परंपरा का परिचय देते हुए इतिहास एवं साहित्येतिहास के अन्तर्संबंधों पर भी प्रकाश डाला गया है।

इस इकाई के अध्ययन के पाश्चात् आप इतिहास एवं साहित्येतिहास के स्वरूप, उसकी प्रक्रिया एवं दोनों ही की लेखन परम्परा से परिचित होंगे आप इतिहास एवं साहित्येतिहास के जटिल अन्तर्संबधों को जान सकेंगे।

1.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- बता सकेंगे कि साहित्य के इतिहास का क्या महत्व है।
- बता सकेंगे कि इतिहास एवं साहित्येतिहास के परिप्रेक्ष्य में पश्चिमी तथा भारतीय विचारकों का क्या योगदान है।
- हिंदी साहित्येतिहास की सम्पूर्ण परम्परा की प्रक्रिया, पृष्ठभूमि एवं महत्ता को समझा सकेंगे।
- इतिहास एवं साहित्येतिहास के अन्तर्संबंध को समझा सकेंगे।

1.3 इतिहास: अर्थ एवं स्वरूप

'इतिहास' शब्द का अर्थ है - 'ऐसा ही था' अथवा 'ऐसा ही हुआ' इस दृष्टि से देखा जाए तो कहा जा सकता है कि अतीत के किसी भी वास्तविक घटनाक्रम का लिपिबद्ध रूप 'इतिहास' कहा जा सकता है। प्रश्न यह है कि क्या अतीत का कोई "अतीत के गर्भ में इतना कुछ छिपा हुआ है कि उसे समग्र रूप में प्रस्तुत करना किसी भी इतिहासकार के वश की बात नहीं है। इसलिए विभिन्न इतिहासकार अपनी-अपनी रूचि एवं दृष्टि के अनुसार अतीत के कुछ पक्षों को अपने-अपने शब्दों में प्रस्तुत करते प्रत्येक व्यक्ति जो कुछ देखता है, उसमें उसकी वैयक्तिक रूचि के साथ-साथ उसके युग

की सामूहिक चेतना, उसके बौद्धिक विकास एवं उसकी भावात्मक प्रवृत्तियों का प्रभाव भी मिश्रित होता है'' इस प्रकार हम देखते हैं कि इतिहास लेखन के विभिन्न दृष्टिकोण हो सकते है तथा इसी आधार पर इतिहास के वास्तविक, अर्थ को जानना दुश्कर हो जाता है। इस समस्या के समाधान के लिए सर्वप्रथम हमें यह जानना आवश्यक है कि 'इतिहास क्या है ?' इतिहास के वास्तविक अर्थ को जाने बिना हम इतिहास की प्रक्रिया, उसके स्वरूप एवं उसकी विभिन्न लेखन परम्पराओं को ठीक से नहीं समझ सकते। इसलिए आइए सर्वप्रथम हम इतिहास की कुछ मान्य परिभाषाओं के विश्लेषण से यह जानने का प्रयत्न करें कि 'इतिहास क्या है?'

1.3.1 इतिहास : परिभाषा

ग्रीक विद्वान हीरोद्योत्तस (484-425 ई.पू.) को इतिहास का संबंध खोज एवं अनुसंधान से माना है तथा इस संबंध में उसकी पांच विशेषताएं बताई हैं -

1. ये वैज्ञानिक विद्या है - क्योंकि इसकी पद्धति आलोचनात्मक होती है।
2. मानव जाति से संबंधित होने के कारण यह मानवीय विद्या है।
3. यह तर्क संगत विद्या है - क्योंकि इसमें तथ्य एवं निष्कर्ष प्रमाण पर आधारित होते हैं।
4. यह अतीत के आलोक में भविष्य पर प्रकाश डालता है, अतः शिक्षाप्रद विद्या है।
5. इतिहास का लक्ष्य प्राकृतिक या भौतिक लक्ष्य की प्रक्रिया का परिवर्तन करना है।

महाभारत में कहा गया है इतिहास अतीत का एक ऐसा वृत्त होता है जिस के माध्यम से धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष का उपदेश दिया जा सकता है। "धर्मार्थकाममोक्षाणामुपदेशसमन्वितम्। पूर्ववृत्तं कथायुक्तमिनतिहासं प्रचक्षते"।

हीरोद्योतस का मानना था कि ''इतिहास परिवर्तन की प्रक्रिया है, उससे यह सिद्ध होता है कि प्रत्येक सत्ता अपने चरम उत्कर्ष पर पहुँच कर अन्त में अपकर्ष की ओर अग्रसर हो जाती है"।

हेनरी जॉनसन के अनुसार अतीत की प्रत्येक घटना इतिहास की कोटि में आती है। उनके अनुसार "इतिहास विस्तृत रूप में वह प्रत्येक घटना है जो कि कभी घटित हुई।'' परन्तु क्योंकि अतीत की कुछ घटनाओं का संबंध पशु जगत से होता है अतः जॉनसन की यह परिभाषा अतिवादी कोटि की परिभाषा कही जाती है।

सर चार्ल्स फर्थ – "इतिहास मनुष्य के समाज में जीवन का, समाज में हुए परिवर्तनों का समाज के कार्यों को निश्चित करने वाले विचारों का तथा उन भौतिक दशाओं का, जिन्होंने उसकी प्रगति में सहायता की, का लेखा जोखा है।''

इम्यूनल काण्ट (1724-1804) "प्रत्यक्ष जगत में वस्तुओं का विकास उसके प्राकृतिक इतिहास के समकक्ष रहता है। बाह्य प्रगति उन आंतरिक शक्तियों की कलेवर मात्र होती है, जो एक निश्चित नियम के अनुसार मानव जगत में कार्यशील रहती है।'' काण्ट की परिभाषा में गहन दार्शनिकता का भाव मिलता है। दरअसल काण्ट के अनुसार जिस प्रकार समस्त मानव जीवन का बाह्य विधान नियमों से बद्ध रहता है वैसे ही मनुष्य का ऐतिहासिक जीवन (इतिहास) भी आंतरिक प्रवृत्तियों द्वारा परिचालित होता है।

रैपसन –"घटनाओं अथवा विचारों का अति से सम्बद्ध विवरण ही इतिहास है।'' रैपसन की यह परिभाषा इतिहास की आंतरिक बुनावट में घटित घटनाओं की पारस्परिक तारतम्यता को उद्घाटित करती है।

टॉमस कार्लाइल – "इतिहास असंख्य जीवन-वृत्तों का सार हैं।''

आर.जी.कांलिंगवुड -''इतिहास समाजों में रहने वाले मनुष्यों के कार्यों एवं उपलब्धियों की कहानी है।'' साथ ही कांलिंगवुड ने यह भी लिखा है ''सम्पूर्ण इतिहास विचारधारा का इतिहास होता है।''

ई.एच.कार - इतिहास को तटस्थ क्रिया न मानकर इतिहासकार एवं तथ्यों के मध्य व्याप्त जीवंत प्रक्रिया के रूप में देखते हैं। कार का यह कहना कि तथ्य स्वयं नहीं बोलते अपितु सुविज्ञ इतिहासकार उनसे (तथ्यों से) अभीष्ट बुलवाता है - सही है। ई.एच0 कार ने लिखा है कि ''वास्तव में इतिहास, इतिहासकार एवं तथ्यों के बीच अर्न्तक्रिया की अविछिन्न प्रक्रिया तथा वर्तमान और अतीत के बीच अनवरत परिसंवाद है।

''भारतीय साहित्य में 'इतिहास' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग 'अथर्ववेद' में प्राप्त होता हैं तदन्तर यह शब्द शतपथ ब्राह्मण, जैनिनीय, बृहदारण्यक तथा छान्दोगोपनिषद में प्रयुक्त हुआ है।

'छान्दोग्योपनिषद' के अनुसार इतिहास का विषय निम्नलिखित है -"

आध्यादि बहुत्याख्यानं देवर्षिचरिताश्रयम्।
इतिहासमिति प्रोक्तंभविष्याद्युतधर्मयुक।।''

प्रस्तत परिभाषाओं के विश्लेषण से यह बात आसानी से जानी जा सकती है कि इतिहास को लेकर दुनिया भर के विद्वानों ने कितना विचार-विमर्श किया है। इकाई के आगे आने वाले भागों में आप

इतिहास की परम्परा के दो धुरवों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे। इतिहास के आधुनिक स्वरूप का विकास पश्चिम में अवश्य हुआ परन्तु इसका यह अर्थ नहीं समझना चाहिए कि भारतीय विद्वानों के पास ऐतिहासिक-दृष्टि का अभाव रहा है। इस संशय का शमन भी इकाई के अगले भागों में जाएगा। परिभाषाएँ किसी भी विषय को समझने के लिए आधार भूमि का काम करती है परन्तु समय के साथ-साथ बड़ी-बड़ी परिभाषाएँ भी अपूर्ण हो जाती है। इतिहास स्वयं में एक जीवन प्रक्रिया है अतः परिभाषाओं के आधार पर उसे बहुत मोटे तोर पर समझे जाने का प्रयास तो किया जा सकता है परन्तु समग्र तौर पर समझा नहीं जा सकता। अतः परिभाषाओं का मोह त्याग कर हम इतिहास की आंतरिक बुनावट पर अपनी दृष्टि केन्द्रित करने का प्रयत्न करते हैं।

इस परिप्रेक्ष्य में सबसे पहले जिस प्रश्न से हमारा सामना होता है वह प्रश्न है कि इतिहास अपनी आंतरिक प्रक्रिया में विज्ञान है अथवा कला ?

1.3.2 इतिहास : विज्ञान अथवा कला

किसी भी अन्य अनुशासन की तरह ही इतिहास के अध्ययन की भी अपनी कुछ समस्याएँ है। इन्हीं समस्याओं से जुझते हुए विभिन्न विद्वानों ने इतिहास एवं उसके दर्शन की व्याख्या की है। सर्वप्रथम यह सुनिश्ति करने का प्रयास किया गया है कि अपनी आंतरिक प्रगति के आधार पर इतिहास को विज्ञान माना जाए अथवा कला। इस प्रश्न का एक-रेखीय उत्तर देना कठिन एवं कई तरह से अव्यवहारिक माना गया है तथा इतिहास को कला एवं विज्ञान को गुणों से समन्वित अनुशासन बताया गया है। विभिन्न विद्वानों ने इतिहास को अलग-अलग कारणों के चले 'कला' एवं 'विज्ञान' की कोटी में रखा है। परन्तु बहुत स्पष्ट रूप से 'इतिहास' को मात्र 'कला' अथवा मात्र 'विज्ञान' कहना उचित नहीं कहा जा सकता। इतिहास के भीतर कलात्मकता की जिनती आवश्यता है उतनी ही आवश्यता वैज्ञानिक वस्तुनिष्ठता की भी है। इस संबंध में यह स्वीकार करते हुए भी कि इतिहास की आंतरिक प्रकृति में कलात्मकता का विशष पुट होता है यह कहा जा सकता है इतिहास की प्रकृति विज्ञान के बहुत अधिक समीप है। ''फिर भी एव वैज्ञानिक व इतिहासकार के मध्य यह कुछ अन्तर हैं - प्रथम के पास एक प्रयोगशाला होती है जबकि दूसरे के पास पुस्तकालय। वैज्ञानिक निर्णय, संक्षिप्त ओर अपरिवर्तनीय होते हैं जबकि इतिहासकार के निर्णय लचीले और विषय परक होते हैं। वैज्ञानिक, प्रतीकों और ग्राफों का प्रयोग करता है जबकि इतिहासकार का कार्य वर्णन और व्याख्या पर निर्भर होता है। वैज्ञानिक, वस्तुनिष्ठ होता है किन्तु इतिहासकार विषयपरक है। वैज्ञानिक विश्व पर लागू होने वाले नियमों को बनाता है किन्तु ऐतिहासिक नियम सदैव त्रुटिपूर्ण होते हैं। इतिहास और विज्ञान का मिल इस दृष्टि से एक है कि दोनों आंकड़ों के संकलन के लिए एक ही पद्धति को अपनाते हैं और दोनों का अंतिम ध्येय सत्य की खोज करना है।''

बोध प्रश्न

(क) सही विकल्प चुनिए

1. भारतीय साहित्य में इतिहास शब्द का सर्वप्रथम उल्लेख किस ग्रंथ में मिलता है ?

   क. महाभारत

   ख. अथर्ववेद

   ग. रामायण

   घ. मनुसंहिता

2. 'इतिहास' की एक सटीक परिभाषा दीजिए तथा अपने शब्दों में उसकी संक्षिप्त व्याख्या कीजिए।

3. ग्रीक विद्वान हीरोद्योत्तस का जन्म कब हुआ था ?

1.4 इतिहास लेखन की पाश्चात्य परम्परा

जैसाकि पहले बताया जा चुका है कि इतिहास लेखन की परम्परा का आरम्भ ग्रीक विद्वान **हीरोद्योत्तस** (484-425 ई.पू.) से हुआ था। इसी समय एक अन्य पाश्चात्य इतिहासविद का नाम भी सामने आता है, जिसे **थूसीडॉइड्स** (471-401 ई.पू.) के नाम से जाना जाता है। हीरोद्योत्तस ने ग्रीक और पारसियों, पश्चिम तथा पूर्व, एशिया तथा यूरूप के कुछ महत्वपूर्ण युद्धों, उन जातियों की जीवन पद्धतियों इत्यादि का महत्वपूर्ण उल्लेख अपनी कृतियों में किया था। अपनी कुछ आंतरिक त्रुटियों के बावजूद थूसीडाइड्स ने ऐथेन्स और स्पाटा के बीच हुए विश्व प्रसिद्ध 'पेलोपोनेशियन' युद्ध का सटीक इतिहास लेखन किया था। इनके उपरांत रोम निवासी **पौलीबियस** (204-122 ई.पू.) केटा (ई.पू. 160 के लगभग) जूलियस सीजर (ई.पू. 51), लीवी (ई.पू. 59 से 17) टैसीटस कॉन्स्टैन्टाइन (306-337 ई.) तथा 'सिवितास दाई' के लेखक 'सेंट ऑगस्टाइन' का नाम पाश्चात्य इतिहास दर्शन के इतिहास में महत्वपूर्ण है।

यूरोपीय इतिहास लेखन के मध्य युग में हमें इतिहास लेखन की दो प्रवृत्तियॉ दिखाई देती है एक तरफ सेंट आगस्टाइन की तटस्थ इतिहास लेखन पद्धति है तो दूसरी तरफ, थूसेबियस, सुकरात, सोजोमेन, थियोडोरेट, फैसिओडोरस जैसे इतिहास लेखकों की इतिहास पुस्तकें प्राप्त होती हैं जिनके विचार, धार्मिक विचार पद्धति पर आधारित होते थे. यूरोप में इतिहास लेखन के विकास का विश्लेषण करते

हुए डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने लिखा है ''धार्मिक एवं साम्प्रदायिक संघर्ष के फलस्वरूप इतिहास-लेखन को तो प्रोत्साहन प्राप्त हुआ हो, साथ ही कुतुबनुमा जैसे वैज्ञानिक आविष्कार ने भी इस कार्य में सहायता प्रदान की। धार्मिक कारणों से ही किन्तु कुतुबनुमा की सहायता से लम्बी समुद्री यात्राएं की गई और भूमि भागों की खोज ने ईसा की 16वीं-17वीं शताब्दियों में इतिहास-अध्ययन की ओर अधिकाधिक ध्यान दिलाया'' इसी विश्लेषण को विस्तार देते हुए खोज के फलस्वरूप यूरोपीय देशों में जो सामाजिक और आर्थिक उथल-पुथल उत्पन्न हुई उससे ईसा की 16वीं-17वीं शताब्दियों में ही जो संवैधानिक एवं प्रणयन को फिर एक नया आयाम प्राप्त हुआ। 18वीं सदी तक आते-आते यूरोप के भीतर राजनैतिक एवं धार्मिक संघर्ष अपनी अंतिम अवस्था भी पार कर शांत हो चला था अतः तत्कालीन इतिहास लेखन इन प्रभावों से अपने को मुक्त कर के ज्ञान एवं तथ्य की भूमि को आधार बनाकर विकसित होने लगा 'जिओवानी बातिस्ता वीचो (1668-1744) ने राजनैतिक युद्ध संघर्ष की मानसिकता से इतिहास लेखन को मुक्त कर के प्रथम बार समाज केन्द्रित इतिहास दृष्टि का विकास किया उसकी इस परम्परा को मांतेस्क्यू (1689-1755) ने विकसित किया। ''उसने अपनी रचनाओं द्वारा प्रकृति वैज्ञानिक की भॉंति तटस्थ दृष्टिकोण ग्रहण कर इंगलैण्ड, फ्रांस और राम के विधानों के क्रमिक विकास का तुलनात्मक अध्ययन कर संस्थाओं और विचारों के विकास में जलवायु को प्रमुख कारण माना,'' मांटेस्क्यू के पश्चात् यूरोपीय विद्वानों की एक लम्बी सूची इतिहास-लेखन के विकास में अपना योगदान देती रही। इस सूची के प्रमुख नाम निम्नलिखित हैं -

वाल्तेयर (1694-1778), डेविड ह्यूम (1711-1776) विलियम रॉबर्ट्सन, माइकेल श्मिट (1736-1794) एडवर्ड गिबनर (1737-1794), अनाल्ड हीरेन (1760-1842), जे0जी0 फिख्टे (1762-1814), फ्रीड्रिख श्लेगेल (1772-1829), एफ0 डब्ल्यू0 शेलिंग (1775-1854), फ्रीड्रिख हेगेल (1770-1831), हाइनरिख लिओ (1799-1878), कार्लाइल (1795-1881)। इस सम्पूर्ण परम्परा के पश्चात् भी यूरोप के विभिन्न भागों में इतिहास-लेखकों की नवीन परम्पा का उद्भव एवं विकास होता रहा। आगस्ट कॉम्टे, जस्टस मोसर, बार्थोल्ड नीबूर (1776-1831), लिओपोल्ड रैंके (1795-1886) एवं थिओडोर मॉमसेन, विलियम स्टब्स, जान रिचर्ड ग्रीन, जॉन आर0 सीले, सेम्युअल आर0 गार्डिनर, आर0जी0 कालिंगवुड, बरट्रेण्ड रसल का इस संदर्भ में उल्लेखनीय है। इसके साथ-साथ यूरोप के भीरत ही मार्क्स के विचारों के आधार पर इतिहास की एक नया व्याख्या प्रस्तुत की जाने लगी। कार्लमार्क्स, लुडविग फायरबाख, लोरिया, एश्ले, हैमण्ड्स, बोगार्ट आदि इतिहासविदों इस परम्परा का क्रमशः उन्नयन किया।

बोध प्रश्न -

1. यूरोप के पाँच प्रमुख इतिहासकारों के नाम लिखिए।
2. ग्रीक इतिहास लेखन का प्रथम विद्वान किसे माना जाता है।

सही विकल्प चुनिए -

3. क. जिवोवानी बातिस्ता वीचों का कालखण्ड माना जाता -

अ. 1668-1744

ब. 1774-1826

स. 1568-1644

द. 19 वीं सदी का प्रारम्भ

ख. हीरोद्योत्तस के पश्चात् प्रख्यात इतिहासकार थे -

अ. बेंजामिन फ्रैंक

ब. रोनाल्ड रीगल

स. थूसीडाइड्स

द. इनमें से कोई नहीं

1.5 इतिहास लेखन की भारतीय परम्परा

प्राचीन भारत के इतिहास लेखन की परम्परा का अपना विशिष्ट चरित्र है। आधुनिक यूरोपीय इतिहास दृष्टि से अलग भारतीय इतिहास को भी अपनी विशिष्ट पद्धति एवं प्रक्रिया है। प्राचीन भारतीय दृष्टि आधुनिक इतिहास दृष्टि से मेल नहीं खाती इसलिए आधुनिक इतिहास दृष्टि को एक मात्र 'इतिहास' दृष्टि मानने वाले बहुत से विशेषज्ञों का मानना है कि प्राचीन भारतीय विद्वान या तो इतिहास लेखन को महत्वहीन मानते थे अथवा प्राचीन भारत में इतिहास लेखन होता ही नहीं था।

डॉ. एच.सी. शास्त्री ने लिखा है, ''प्राचीन भारतीयों ने इतिहास के प्रति विशेष ध्यान नहीं दिया क्योंकि वे अतीत तथा वर्तमान के भौतिक जीवन की अपेक्षा आगामी जीवन में रूचि रखते थे।'' यह बात संभवतः कुछ हद तक सच हो सकती है परन्तु वास्तविक बात यह नहीं है। निःसंदेह प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन में अनेक समस्याएं थीं फिर भी प्राचीन भारतीय इतिहास लेखकों ने इस दिशा में निरन्तर प्रयास जारी रखे। इतिहास लेखन के प्रति भारतीयों की अरूचि के बाद भी यहाँ पर लेखन हेतु विशाल ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध थी जिसका विद्वानों ने समय-समय पर प्रयोग किया। इस संबंध में प्रोफेसर सुरेन्द्र नाथ बनर्जी का कथन बहुत असंतग है कि प्राचीन भारत में श्रेष्ठ ऐतिहासिक साहित्य की रचना नहीं हुई ऐतिहासिक महत्व के ग्रंथ किन्ही कारण वश खो गए हैं अथवा नष्ट हो गए हैं परन्तु यह संभावना उचित नहीं प्रतीत होती कि सभी ग्रंथ नष्ट हो गए हों। यदि

कुछ ग्रंथ उस काल में लिखे गए होते तब उनका कोई न कोई संकेत अथवा संदर्भ बाद के लेखकों की कृतियों में अवश्य मिलता परन्तु इस तथ्य को लगभग सभी विद्वानों ने स्वीकार किया कि मुद्राओं, अभिलेखों कास्यं, प्लेटों और सिक्कों के रूप में प्राचीन इतिहास को जानने के महत्वपूर्ण साक्ष्य बहुत बड़ी मात्रा में आज भी उपलब्ध हैं। प्राचीन भारत के इतिहास से संबंधित ग्रंथों को हम इस प्रकार विश्लेषित कर सकते है।

1. **वेद** - प्राचीन भारतीय साहित्य में वेदों का स्थान अप्रतिम हैं। वेद न केवल धार्मिक दृष्टि से सर्वोपरि माने गए हैं अपितु अपनी विशद विषयवस्तु और गंभीरता के लिए विश्व साहित्य में अपना अलग स्थान रखते हैं। ये संख्या में चार हैं - ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद एवं अथर्ववेद। यद्यपि इन वेदों का महत्व धार्मिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से अधिक है तब भी वैदिक भारत की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं भाषिक परिस्थितियों का दिग्दर्शन इनमें प्राप्त होता है। इन ग्रंथों से प्राचीन भारतीय इतिहास की विपुल सामग्री प्राप्त की गई है तथा भविष्य में होने वाले शोधों से वेद भारतीय इतिहास लेखन में और अधिक महत्वपूर्ण होकर उभरेंगे इस बात पर संशय की कोई संभावना नहीं है।

2. **ब्राह्मण ग्रंथ एवं उपनिषद** - वेदों के अतिरिक्त अन्य वैदिक साहित्य में निहित सामग्री को भी प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है। धार्मिक एवं ऐतिहासिक रूप से वेदांग एवं सूत्र साहित्य का अत्यधिक महतव है। उपनिषद एवं ब्राह्मण ग्रंथ इस दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है।

3. महाकाव्य - लौकिक संस्कृत को दो महान महाकाव्यों की विषय वस्तु प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण है। आदिकवि वाल्मिकी प्रणीत 'रामायण' एवं महाकवि व्यास द्वारा लिखित 'महाभारत' इस कोटी की सर्वोपरि रचनाएँ है। इसके अतिरिक्त लौकिक संस्कृत साहित्य की कई महत्वपूर्ण रचनाएँ तत्कालीन भारतीय समाज, राज्य, संस्थाओं, प्रशासकों एवं सामान्य जनों की रीति-नीति एवं प्रबंधन की अत्यावश्यक ऐतिहासिक सामग्री से ओत-प्रोत है।

4 . पुराण - इनकी कुल संख्या 18 है. हांलाकि उप-पुराणों की संख्या बहुत अधिक है। इस पुराण साहित्य की विषय-वस्तु भी प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है।

5 . जैन तथा बौद्ध साहित्य - प्राचीन भारत के दो महान धर्मों से संबंधित ग्रंथों का महत्व न केवल धार्मिक रूप में है अपितु इतिहास लेखन की सामग्री के रूप में भी जैन एवं बौद्ध साहित्य का महत्व स्पष्ट है। जैन एवं बौद्ध धर्म से संबंधित साहित्यिक एवं अन्य अनुशासनपरक सामग्री का उपयोग आरम्भ से लेकर अब तक इतिहास लेखकों ने निरंतर किया है। अब तक इतिहास लेखकों ने निरंतर किया है। जैन धर्म के अंतर्गत भद्रबाहु चरित, नेमिनाथ चरित, पउम चरिउ, महापुराण, कथाकोश इत्यादि तथा बौद्ध धर्म के अन्तर्गत (क) पिटक (ख) जातक (ग) निकाय, इन तीन अंगों का साहित्य आज उपलब्ध है। बौद्ध पिटक साहित्य के अन्तर्गत तीन महत्वपूर्ण अंग हैं (1) विनय पिटक (2) सुत्त

पिटक (3) अभिधम्म पिटक । जातक साहित्य में बुद्ध के पूर्व-जन्मों का वर्णन मिलता है। बौद्ध धर्म से संबंधित अधिकांश साहित्य पाली भाषा में उपलब्ध है। परन्तु परवर्ती काल में संस्कृत भाषा में भी बौद्ध धर्म से परिचालित बहुत सा साहित्य प्राप्त हुआ है। इन दोनों ही धर्मों का यह प्राप्त साहित्य प्राचीन भारत के इतिहास लेखन के अत्यधिक महत्व के इतिहास लेखन के अत्यधिक महत्व रखता है।

प्रमुख साहित्यिक ग्रंथ - आज इतिहास लेखकों के पास प्राचीन भारतीय विद्वानों द्वारा लिखित अकृत साहित्य उपलब्ध है जिसका उपयोग भारतीय इतिहास लेखन के लिए किया जाता रहा है। साहित्य, दर्शन, न्याय, व्याकरण, साहित्य, कला, संगीत आदि अनुशासनों से संबंधित अनेकानेक महत्वपूर्ण ग्रंथों को इस कोटी में रखा जा सकता है। इनमें से प्रमुख ग्रंथ निम्नलिखित हैं -

1. अष्टाध्यायी (व्याकरण ग्रंथ-आचार्य पाणिनि)

2. महाभाष्य (व्याकरण ग्रंथ - आचार्य पंतजलि)

3. अर्थशास्त्र (राजनैतिक एवं आर्थिक ग्रंथ आचार्य कौटिल्य)

4 . कामसूत्र (ललित ग्रंथ - आचार्य वात्स्यायन)

साथ ही महाकवि कालिदास, भवभूति, भारवि, श्रीहर्ष, बाणभट्ट, राजशेखर कल्हण, मास, विल्हण, जगन्नाथ आदि अनेकानेक कवियों, काव्यशास्त्रियों, विचारकों एवं साहित्यिकों द्वारा लिखित रचनाओं का उपयोग प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन में निरंतर सहायता प्रदान करता है। इनके अतिरिक्त मध्यकालीन प्रादेशिक बोलियों एवं भाषा में लिखा गया अकूत साहित्यिक भण्डार भी प्राचीन एवं मध्यकालीन भारत के इतिहास लेखन के आवश्यक सामग्री उपलब्ध कराता रहा है। महाकवि चंदबरदायी, कबीर, सूरदास, नामदेव, तुकाराम आदि अनेक कवि एवं साहित्यिकों के ग्रंथ इस कोटी में रखे जा सकते हैं।

कल्हण - कल्हण प्राचीन भारत का एक प्रसिद्ध इतिहासकार है। कल्हण का संबंध वर्तमान कश्मीर से है। वह एक विद्वान कश्मीरी ब्राह्मण था। माना जाता है कि कल्हण के विद्वान पिता 'कण्पका' कश्मीर के यशस्वी राजा हर्ष के दरबार में मंत्री था। कल्हण द्वारा लिखित विश्वप्रसिद्ध ज्ञानकोश ग्रंथ का नाम राजतंरगिणी (1148 ई.) था। इस ज्ञानकोश का लेखन कल्हण द्वारा दो वर्ष के अथक परिश्रम के पश्चात् किया गया। मूलतः कश्मीर पर लिखे गए इस ग्रंथ का महत्व अन्ततः सम्पूर्ण भारतीय इतिहास लेखन में अक्षुण्ण रहेगा।

मध्यकाल के अन्य सहायक ग्रंथ - मध्यकालीन भारतीय साहित्य एवं संस्कृति के प्रसिद्ध अन्वेषक महीबुल हसन ने कहा है, ''मध्युगीन इतिहासकारों ने अपने उद्योग को गम्भीरता से लिया और इतिहास के उच्च विचार को बनाए रखा। उदाहरण के तौर पर, बरनी इतिहास और इल्म-उल

हदीस को समतुल्य मानता था और विश्वास करता था कि इतिहासकार को सत्य के प्रति निष्ठावान होना चाहिए और अतिश्योक्ति तथा शब्दों की वृथा भाषा से परहेज रखना चाहिए। लेकिन दुर्भाग्यवश, अधिकांश मध्यकालीन इतिहासकार दरबार से संबंध रखते थे, उन्होंने केवल वह ही नहीं लिखा जो उन्हें उपयुक्त अनुभव हुआ वरन् अपने संरक्षकों को उनकी प्रशंसा के लेखों तथा काव्यों से तुष्ट भी किया।'' तटस्थ कवियों एवं साहित्यिक विद्वानों के अतिरिक्त मध्यकाल के बहुत से दरबारी कवियों, विद्वानों एवं इतिहासकारों ने अनेक ऐसी इतिहास परक पुस्तकों की रचना की जिनका उपयोग प्राचीन एवं मध्कालीन इतिहास लेखन के आवश्यक है। यह सामग्री अरबी तथा फारसी में उपलब्ध है जिनमें से कुछ प्रमुख पुस्तकों का अनुवाद हिंदी, अंग्रेजी तथा अन्य प्रादेशिक एवं विदेशी भाषाओं में किया जा चुका है।

इस प्रकार की प्रमुख पुस्तकें निम्नलिखित है -

1 . तबकात-ए-नासिरी - मिनहाज-उस-सिराज़

2 . तारीख-ए-मुहम्मदी-मुहम्मद बिहमद खानी

3 . तारीख-ए-मुबारक शाही - याहा बिन अहमद

4 . सीरत-ए-फिरोजशाही-शम्स सिराज अफीफ

5 . तारीख-ए-फिरोजशाही - शम्स सिराज अफीफ

6 . ताज उल मासिर - हसन निजामी

7 . तुगलकनामा - अमीर खुसरो

8 . फुतुह उल सलातीन - इसामी

9 . शाहनामा - फिरदौसी

10 . तहकीक-ए-हिंद - अलबरूदी

11 . आइन-ए-सिकन्दरी - अमीर खुसरों

12 . तारीख-ए-इलाही - अमीर खुसरो

13 . सान-ए-मुहम्मदी - जियाउद्दीन बरनी

14 . तारीख-ए-फिरोजशाही - जियाउद्दीन बरनी

15 . रहेला - मुहम्मद बिन मुहम्मद 'इब्नबतूता'

16 . जफरनामा - शराफुद्दीन अली याजदी

17 . तारीख - ए- दाऊदी - अब्दुलाह

इन प्रमुख इतिहास ग्रंथों के अतिरिक्त अनेक मध्यकालीन मुस्लिम ग्रंथों के अतिरिक्त अनेक मध्यकालीन मुस्लिम विद्वानों ने ऐसी बहुत पुस्तकों का प्रणयन कया है जो प्राचीन एवं मध्यकालीन भारतीय समाज, संस्कृति, राजनीति, धर्म, अर्थ तथा जीवन-पद्धतियों का दिग्दर्शन कराती है। भारतीय इतिहास लेखन परम्परा में इन प्राचीन एवं मध्यकालीन ग्रंथों का महत्व सदा बना रहेगा।

बोध प्रश्न: लघु उत्तरीय प्रश्न

क. चार वेदों के नाम लिखिए तथा बताइये प्रमुख पुराणों की संख्या क्या है ?

ख. बौद्ध साहित्य के तीन अंग कौन-कौन से हैं ?

ग. अष्टाध्यायी एवं कामसूत्र के रचनाकार हैं ?

घ. अमीर खुसरों एवं इब्नबतूता की एक-एक कृतियों का नाम लिखिए।

1.6 साहित्येतिहास: अर्थ एवं स्वरूप

सर्वप्रथम यह प्रश्न महत्वपूर्ण है कि साहित्येतिहास क्या है। वे कौन-कौन से तत्व है जो किसी संगठिन संरचना को साहित्येतिहास के रूप में परिभाषित करती है। इस संबंध में प्रख्यात साहित्येतिहासकार वार्ष्णेय का मत उद्धृत किया जा सकता है, "साहित्येतिहास व केवल साहित्य का पुरावृत्त अथवा उसके अतीत का इतिवृन्तात्मक विश्लेषण है, न केवल जीवनियों या कविवृत्त का संग्रह है, न केवल स्त्रोतों की खोज है, न केवल भाषा वैज्ञानिक अध्ययन है, न केवल कला पाठालोचना है, न केवल विधाओं और आंदोलनों का विकास क्रम या धारा निरूपण है और न केवल आलोचना है। साहित्येतिहास का उद्देश्य न केवल कलाकारों को जन्म देना है, न संस्कृति का प्रचार करना है और न अध्यापक बनाना है। उस लम्बे उदाहरण के पश्चात् यह तथ्य निश्चित हो जाते हैं कि अन्ततः साहित्येतिहास क्या नहीं है जब एक बार यह तथ्य निश्चित हो जाए कि साहित्येतिहास क्या नहीं है तो वास्तविक अर्थों में साहित्येतिहास क्या है यह जानना कंचित सरल जान पड़ेगा।

1.6.1 साहित्येतिहास: अवधारणा एवं परिभाषा

इकाई के पूर्व भाग में हमने देखा कि साहित्येतिहास का स्वरूप निर्धारित करते समय हमें किन-किन तथ्यों को मूलवश साहित्येतिहास नहीं समझ रखना चाहिए। उपरोक्त विश्लेषण के पश्चात् निश्चित किया जा सकता है कि साहित्येतिहास की मूल अवधारणा क्या है।

(क) साहित्येतिहास की अवधारणा - अपने विश्लेषण को आगे बढ़ाते हुए श्री वार्ष्णेय लिखते हैं, '' साहित्येतिहास मानव जीवन की ऊर्जा, उसके सूक्ष्म स्फुलिंग, उसके चेतना के व्यपक ज्ञान की एक विशिष्ट होने के कारण उसका अपना स्वतंत्र अस्तित्व सर्वोच्च साधन है। वह एक ऐसी खोज का माध्यम है जिससे मानव मन का वह पक्ष ढूंढा जाता है जो हमारे अस्तिचर्ममय अस्तित्व से उपर हैं। मैं साहित्येतिहास को ज्ञान की ऐसी विधा मानता हूँ जो कृतियों के अध्ययन द्वारा निरंतर परिवर्तनशील जीवधारियों का सार्वभौम के भीतर विकास (जैविक विकास नहीं) स्थिर करती है।'' इस प्रकार हम देखते हैं कि साहित्येतिहास ने ज्ञान की एक ऐसी शाखा के रूप में अपना विकास किया है जिसके अन्तर्गत साहित्य के माध्यम से मानव की समग्र वैचारिक एवं मनोगत चेतना के विकास का अध्ययन संभव है। प्रख्यात विद्वान **श्री नलिन विलोचन शर्मा** ने लिखा है, साहित्येतिहास ''नामेां की तालिका-मात्र नहीं है। वह केवल घटनाओं और तिथियों की भी सूची नहीं है और, साहित्यिक इतिहास लेखकों की ऐसी तिथिमूलक तालिका भी नहीं है, जिसमें उनकी कृतियों का विवण और सारांश मात्र है। साहित्यिक इतिहासकार के लिए यह तो आवश्यक है ही कि उसे प्राग्भावी साहित्य का पाठ सुलभ हो, क्योंकि साहित्यिक इतिहास तब तक लिखा ही नहीं जा सकता जब तक समृद्ध पुस्तकालय और सुव्यवस्थित सूचीपत्र न हो किन्तु यदि साहित्यिक इतिहासकार चाहता है कि स्वयं उसकी तिथिमूलक सूचीपत्र से कुछ अधिक भिन्न हो, तो उसे कार्य-कारण संबंध और सातत्य का ज्ञान, सांस्कृतिक परिवेश का कुछ बोध और उस व्यवस्था में यत्किंचत् प्रवेश होना ही चाहिए, जिसमें अंशीभूत प्रवेश होना ही चाहिए, जिसमें अंशीभूत कलाएँ अंशीभूत सभ्यता से संबद्ध रहती है।

(ख) साहित्येतिहास की परिभाषा - साहित्येतिहास की अवधारणा को निश्चित करने के पश्चात् अध्ययन की उपयोगिता के लिए आवश्यक है कि साहित्यिक इतिहास के स्वरूप का निर्धारण भी आवश्यक। इस संबंध में यह भी महत्वपूर्ण है कि साहित्येतिहास की एक निश्चित परिभाषा का निर्धारण एवं विशलेषण किया जाए। इसी आधार पर साहित्येतिहास का स्वरूप स्पष्ट किया जा सकता है। विद्यार्थियों के अध्ययन को ध्यान मे रखकर हम कुछ सर्वमान्य परिभाषाओं को उद्धृत कर रहे हैं। इन्हीं परिभाषाओं के विश्लेषण से हम साहित्येतिहास का स्वरूप निश्चित कर सकेंगे। आचार्य रामचंद्र शुक्ल – **"जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। आदि से अंत तक इन्हीं चित्तवृत्तियों**

की परंपरा को परखते हुए साहित्य परंपरा के साथ उनका सामंजस्य दिखाना ही 'साहित्य का इतिहास' कहलाता है।''

"किसी भी भाषा के साहित्य का इतिहास-लेखक उस भाषा के साहित्य के विषय में भाषा वैज्ञानिक गवेषणा पाठालोचन, सम्पादन, सांस्कृतिक चिंतन की व्याख्याओं, समीक्षाओं, समाज की परिवेशगत प्रवृत्ति आदि सभी अध्ययन प्रणालियों का उपयोग करता है और उसके प्रसाद का निर्माण इसकी नींव के बिना संभव नहीं है। परिभाषाओं के आलोक में साहित्येतिहास की जो तस्वीर सामने आती है उसे अतीत और वर्तमान, रूप और वस्तु के परम्परागत निष्कर्षों की कसौटी पर चर्चा का केन्द्र नहीं बनाया जा सकता। साहित्येतिहास में रचनाओं का मूल्यांकन रचनाकार की रचनाशीलता के संबंध में जीवन की वास्तविकता की मींमासा, परम्परा का विवेचन और युग की सामाजिक सांस्कृतिक खोज का काम होता है।''

इस प्रकार हम देखते हैं कि विभिन्न विद्वानों ने साहित्येतिहास की अलग-अलग परिभाषाएँ निश्चित की है जिससे अध्येता को साहित्येतिहास के स्वरूप का ज्ञान प्राप्त होता है।

1.7 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप -

- ❖ इतिहास के अर्थ, स्वरूप एक प्रक्रिया का ज्ञान प्राप्त कर चुके होंगे।
- ❖ विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाओं के माध्यम से इतिहास की अवधारणा का ज्ञान प्राप्त कर चुके होंगे।
- ❖ इतिहासलेखन की भारतीय एवं पाश्चात्य परम्परा को जान चुके होंगे।
- ❖ साहित्येतिहास का स्वरूप, अर्थ एवं प्रक्रिया का ज्ञान प्राप्त कर चुके होंगे।

1.8 शब्दावली

साहित्येतिहास	-	साहित्य का इतिहास
परिप्रेक्ष्य	-	संबंध में, संदर्भ
श्रेयस्कर	-	लाभकारी, कल्याणकारी
कुतुबनुमा	-	दिशा सूचक यंत्र
सार्वभौम	-	जो सब जगह स्थित हो

सर्वमान्य - सभी को मान्य, स्वीकार

1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.3 के उत्तर

(क) अथर्ववेद

(ग) 484-425 ई.पू.

1.4 के अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(अ) सेंट आगस्टाइन

(ब) मौतेस्क्यू

(स) वोल्तेयर

(द) फीड्रिख हेगेल

(य) कार्लाइल

2. हीरोद्योतस

3. सही विकल्प चुनिए

(क) 1668-1744

(ख) थूसीडाइड्स

1.6 अतिलघु उत्तरीय प्रश्न -

(क) ऋग्वेद, अथर्ववेद, यजुर्वेद, सामवेद, 18 पुराण

(ख) (1) पिटक (2) जातक (3) निकाय

(ग) पाणिनी, वात्स्यायन

(घ) (1) तारीख-ए-इलाही - अमीर खुसरो

(2) रहेला - इब्नबतूता।

1.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. गुप्त, गणपति, हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास (प्रथम खण्ड), 2010, लोकभारतीय प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ - 01
2. मौर्य, देवलाल, हिंदी साहित्य का इतिहास दर्शन और रामचंद्र शुक्ल, 1993, एक्सीलेंश पब्लिशर्स इलाहाबाद, पृष्ठ -03
3. गुप्त गणपति, पूर्वोक्त, पृष्ठ - 03
4. खुराना एवं बंसल, इतिहास लेखन, धारणाएँ तथा पद्धतियाँ , 2009-10, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा, पृष्ठ - 03
5. वार्ष्णेय, लक्ष्मीसागर, इतिहास और साहित्येतिहास 1984, भारतीय साहित्य प्रकाशन, मेरठ, पृष्ठ - 37
6. पूर्वोक्त, पृष्ठ - 37
7. पूर्वोक्त, पृष्ठ - 38
8. खुराना एवं बंसल, पूर्वोक्त, पृष्ठ - 112
9. पूर्वोक्त, पृष्ठ - 122
10. वार्ष्णेय, लक्ष्मीसागर, पूर्वोक्त, पृष्ठ - 85
11. पूर्वोक्त, पृष्ठ - 86
12. शर्मा, नलिन विलोचन, साहित्य का इतिहास दर्शन, संवत् 2016, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, पृष्ठ - 33
13. शुक्ल, रामचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास संवत् 2055, काशीनागरी प्रचारिणी, सभा, वाराणसी, पृष्ठ-01
14. व्यास, भोलाशंकर, साहित्य का इतिहास - लेखन समस्या व समाधान, पृष्ठ - 04

1.11 सहायक पाठ्य सामग्री

1. इतिहास लेखन, धारणाएँ तथा पद्धतियॉ डा.0 के0एल0 खुराना, डा.0 आर0के0 बंसल लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।

2. इतिहास और साहित्येतिहास, डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, भारतीय साहित्य प्रकाशन मेरठ

3. हिंदी साहित्य का इतिहास-दर्शन, डॉ. शिवकुमार दिल्ली।

1.12 निबंधात्मक प्रश्न

(क) इतिहास की परिभाषा देते हुए इतिहास लेखन की भारतीय एवं पाश्चात्य परम्परा का विवेचन कीजिए।

(ख) साहित्येतिहास से आप क्या समझते है? सविस्तार व्याख्या कीजिए।

इकाई 2 हिन्दी साहित्येतिहास लेखन की परंपरा

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 हिन्दी साहित्येतिहास परम्परा का उद्भव एवं विकास
2.3.1 हिन्दी साहित्येतिहास का स्वरूप
2.3.2 हिन्दी साहित्येतिहास की सामग्री एवं स्रोत
2.4 हिन्दी साहित्येतिहास की परम्परा (एक)
2.4.1 गार्सां द तासी कृत 'इतिहास'
2.4.2 मौलवी करीमुद्दीन एवं एफ.फैलन कृत 'इतिहास'
2.4.3 शिव सिंह सेंगर कृत 'इतिहास'
2.4.4 सर जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन कृत 'इतिहास'
2.4.5 मिश्रबन्धु कृत 'इतिहास'
2.4.6 एडविन ग्रीव्ज कृत 'इतिहास'
2.4.7 एफ.ई. के कृत 'इतिहास'
2.5 हिन्दी साहित्येतिहास की परम्परा (दो)
2.5.1 आचार्य रामचंद्र शुक्ल कृत 'इतिहास'
2.5.2 हिन्दी साहित्येतिहास के अन्य महत्वपूर्ण ग्रन्थ
2.6 सारांश
2.7 शब्दावली
2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
2.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
2.11 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई हिन्दी स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम के अंतर्गत सम्मिलित है.इस इकाई के अध्ययन से पूर्व आपने जाना की इतिहास किसे कहते हैं. 'इतिहास' का अपना आतंरिक स्वरुप व उसकी प्रक्रिया क्या है साथ ही आपने यह भी जाना की साहित्येतिहास किसे कहते हैं ? साहित्येतिहास के लक्षण, स्वरुप और विशेषताएं क्या हैं। प्रस्तुत इकाई से पूर्व आपने इतिहास तथा साहित्येतिहास की विभिन्न लेखन पद्धतियों एवं परम्पराओं का ज्ञान प्राप्त किया।

प्रस्तुत इकाई में आप जानेंगे कि हिन्दी साहित्येतिहास का लेखन किन परिस्थितियों में प्रारम्भ हुआ। वो कौन-कौन से स्रोत थे जिनसे सामग्री संचयन कर इतिहास लेखकों ने हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन की नींव रखी। इस इकाई में आप यह भी जानेंगे कि हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन का उद्भव एवं क्रमशः विकास कैसे हुआ. औपनिवेशिक एवं प्रति-औपनिवेशिक वातावरण ने हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन की पद्धतियों को कैसे और कितना प्रभावित किया।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप हिन्दी साहित्येतिहास लेखन की सम्पूर्ण परम्परा का परिचय प्राप्त कर सकेंगे। जिसके आधार पर आप हिन्दी साहित्य के विभिन्न कालखंडों एवं उनकी विशेषताओं तथा सीमाओं को जान सकेंगे.

2.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप -

- बता सकेंगे कि हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन में सामाजिक पृष्ठभूमि का क्या महत्व है तथा साथ ही यह भी बता सकेंगे कि साहित्य की विचारधारा को समाज कैसे और कितना प्रभावित कर सकता है।
- समझा सकेंगे कि हिन्दी समाज की ऐतिहासिक चेतना का विकास क्रमशः कैसे हुआ तथा हिन्दी साहित्येतिहासकारों ने इस चेतना का रेखांकन और मूल्यांकन कैसे किया।
- समझा सकेंगे कि किसी भी समाज की साहित्यिक चेतना को विकसित करने में इतिहास का क्या महत्व है।

2.3 हिन्दी साहित्येतिहास परम्परा का उद्भव एवं विकास

किसी भी साहित्य का इतिहास लेखन बहुत जरूरी है। इतिहास लेखन इसलिए जरूरी नहीं कि उक्त साहित्य की सुदीर्घ परम्परा को कुछ पृष्ठों के उपयोग से जाना जा सके अपितु उस साहित्य

के भीतर स्वयं अपने को पहचानने की आकॉक्षा इसका कारण होना चाहिए। दरअसल साहित्य केवल इसलिए नहीं होता है कि हम बीते हुए कालखण्ड को पहचान सकें अपितु साहित्य के इतिहास लेखन की प्रक्रिया अतीत के साथ-साथ वर्तमान को पहचानने की भी होती है।

2.3.1 हिन्दी साहित्येतिहास का स्वरूप -

हिंदी साहित्येतिहास को किसी भी कारण मिश्रबंधुओं से पहले नहीं खींचा जा सकता। हालांकि अन्ततः हिंदी साहित्य का पहला व्यवस्थित इतिहास तो **आचार्य रामचंद्र शुक्ल** (1884-1941) का **'हिंदी साहित्य का इतिहास'** (1929) ही है। परन्तु सर ग्रियर्सन और मिश्रबंधुओं का अध्ययन हम हिंदी साहित्य के इतिहास को जाँचने वाली मेधा के दो ध्रुवांतों के रूप में कर सकते हैं। एक इतिहास (मिश्रबंधु विनोद) उस जाति की प्राचीन इतिहास-दृष्टि के साथ अपने वर्तमान को परिभाषित करने वाला दिखाई देता है तो दूसरा इतिहास (**द मॉर्डन वर्नाक्यूलर लिट्रेचर ऑफ हिन्दुस्तान**) उस जाति की चेतना को औपनिवेशिक प्रत्यारोपण के माध्यम से परिभाषित करने की कोशिश करता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने इतिहास में पहली बार साहित्य और समाज के गतिशील विकासवादी संबंधों को पहचानने की कोशिश की थी, जैसा कि उनका इतिहास संबंधी दृष्टिकोण है, जिसमें वे लिखते है: ''जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में परिवर्तन होता चला जाता है। आदि से अंत तक इन्हीं चित्तवृत्तियों की परम्परा को परखते हुए साहित्य परम्परा के साथ उनका सामंजस्य दिखाना ही 'साहित्य का इतिहास' कहलाता है।"

कोई भी इतिहास साहित्य का लिखा जाएगा तो साहित्य में जनता की चित्तवृत्ति के अनुरूप कैसे परिवर्तन हुआ है और चित्तवृत्तियों में परिवर्तनों का सामाजिक कारण क्या है इसे दिखलाए बिना इतिहास नहीं हो सकता और परिवर्तनों में जब तक आप परम्परा का निरूपण नहीं करेंगे, नैरंतर्य नहीं दिखाएं गे, तब तक इतिहास नहीं होगा। इसलिए उसमें परम्परा और परिवर्तन, सामाजिक आधार पर चित्तवृत्तियों के अनुरूप साहित्य में जैसे-जैसे परिवर्तन होगा, दिखाएँगे । यही इतिहास होगा। निश्चित ही शुक्ल जी ने हिंदी को उसका पहला व्यवस्थित इतिहास ही नहीं अपितु हिंदी को एक व्यवस्थित इतिहास-दृष्टि भी प्रदान की। उन्होंने अपने से पहले की सम्पूर्ण ऐतिहासिक चेतना तथा साहित्य विषयक सामग्री को जोड़कर यह कार्य किया। सामाजिक चेतना के मौलिक परिवर्तनों के साथ क्रमशः विकसित होती हुई 'ऐतिहासिक-दृष्टि पर बात करते हुए प्रो.रामस्वरूप चतुर्वेदी लिखते हैं : "19वीं सदी से ही आधुनिक चिंतन सामान्य जन को केन्द्र में रखकर चलता है। इसलिए इतिहास में राज-वंशों के स्थान पर सामाजिक इतिहास का महत्व, साहित्य में क्लैसिक आभिजात्य के स्थान पर रोमोंटिकों की जनसामान्य में रूचि, दर्शन में मानववादी परिणति, जनतंत्र का उदय, ये सभी प्रवत्तियॉं

एक ही दिशा की ओर संकेत करती है। इसी समय के आस-पास लोक इतिहास और लोक वार्ता में अध्ययन की निष्ठा जाग्रत होती है, और जर्मनी के पांडित्य में उस समय उपहास के विषय 'नव्य वैयाकरण' अतीत की गौरवशाली पर अब मृत भाषाओं के स्थान पर समकालीन जीवित एवं विकासशील जनभाषाओं के अध्ययन पर बल देते हैं।.....लोक जीवन और लोक शक्ति में आस्था आधुनिक विचारधारा की एक प्रमुख पहचान है।"

2.3.2 हिन्दी साहित्येतिहास की सामग्री एवं स्रोत

श्री देवलाल मौर्य ने 'हिंदी साहित्येतिहास लेखन के उद्गम स्रोत' का परिचय देते हुए लिखा "यह एक विचारणीय प्रश्न है कि हिंदी के इस विकसित रूप का मूल स्रोत क्या है और वह कहाँ से निकलकर कहाँ तक प्रवाहित हुआ है?..... मूल कृतियों के अतिरिक्त जो सूचनाएँ अन्य स्थानों से प्राप्त होती है, उन्हें साहित्येतिहास के स्रोत कहा जा सकता है। सामान्यतः इतिहास के स्रोत बहुमुखी होते हैं, परन्तु साहित्येतिहास के स्रोत काफी सीमित एवं कई श्रेणियों में विभक्त होते हैं। उसके पश्चात् उसी युग में लिखा गया अन्य साहित्य आता है। क्रमशः काल के विस्तार में लिखे गए साहित्य की प्रमाणिकता संदिग्ध होती जाती है परन्तु उनसे कार्य लेने के अपने ऐतिहासिक तरीके हैं।"

उन्होंने अपने से पूर्व में हुए अध्ययनों के आधार पर हिंदी साहित्येतिहास की सामग्री को 10 भागों में विभाजित किया है।

1- कविवृत्त-संग्रह,
2- पूर्ववर्ती इतिहास,
3- वार्ता-साहित्य,
4- भक्तमाल साहित्य
5- पश्चिमी साहित्य,
6- जीवनी साहित्य,
7- ग्रंथों में आए उद्धरण,
8- दरबारी ग्रंथ,
9- सांप्रदायिक ग्रंथ,
10- शिलालेख आदि।

हिन्दी साहित्येतिहास लेखन के कुछ प्रमुख स्रोत-

1. कविवृत्त-संग्रह –

- कविमाला (संवत् 1712) 75 कवि संकलित।
- कालिदास हजारा (सन् 1719) 212 कवि।

- अलंकार-रत्नाकर (संवत् 1792) ।
- सार संग्रह (संवत् 1880) ।
- सत्कविगिराविलास (संवत् 1803) बदलेव कवि कृत-17 कवि संकलित।
- विद्वन्मोदतरंगिणी-राजासुब्बा सिंह (संवत् 1874) 44 कवि संकलित।
- राग कल्पद्रुम-कृष्णानंद व्यासदेव रामसागर (संवत् 1900) 200 संत कवि संकलित। मिश्रबंधुओं ने इसी ग्रंथ को 'रामसागरोद्भव संग्रह' माना है।
- रामचन्द्रोदय-ठाकुर प्रसार त्रिवेदी (संवत् 1920) 242 कवि संकलित।
- दिग्विजय भूषण-लाला गोकुल प्रसाद 'बृज' (संवत् 1952) 192 कवि संकलित।
- सुन्दरी तिलक-भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र (सन् 1869) 69 कवि संकलित।
- भाषा काव्य संग्रह (महेश दत्त शुक्ल) (सन् 1873) ।
- हिंदी-कोविद-रत्नमाला (तीन भागों में)-डॉ.श्यामसुदंर दास (सन् 1909-1914) ।
- कविता कौमुदी (चार भागों में) पं. रामनरेश त्रिपाठी (सन् 1922-1924)।
- ब्रजमाधुरी सार-वियोगी हरि (सन् 1923) ।

2. वार्ता साहित्य - सुप्रसिद्ध पुष्टिमाग्रीय संप्रदाय में इन ग्रंथों का महत्वपूर्ण स्थान है। ये दो हैं –

- चौरासी वैष्णवन की वार्ता (सन् 1568 के लगभग)।
- दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता (सन् 1568 के लगभग)।

3. भक्तमाल साहित्य –

- नाभादास कृत 'भक्तमाल' (लगभग 1585)।
- जगाकृत 'भक्तमाल'।
- चैनजी कृत 'भक्तमाल'
- भगवत मुदित कृत 'रसिक अनन्यमाल'।

4. परिचयी साहित्य – यह भी भक्तमाल की तरह सन्त-भक्त कवियों के परिचय (चरित्र इत्यादि) का संकलन है।

- अनंतदास की 'परिचयियाँ ' सर्वाधिक प्रसिद्ध है।

5. बीतक साहित्य या जीवनी साहित्य –

'बीतक' शब्द का अर्थ है – वृत्त या वृत्तान्त

- स्वामी लाल दास कृत बीतक
- ब्रजभाषा कृत बीतक।
- हंसराज स्वामी कृत बीतक इत्यादि।

हिन्दी साहित्य से संबंधित ऐसी इतस्तत सामग्री का अपना ऐतिहासिक महत्व है। महत्वपूर्ण होते हुए भी यह सामग्री इतिहास नहीं अपितु यह अपने आप में इतिहास-दृष्टि देने में भी असमर्थ है। संभवत: इतिहास-दृष्टि इस सामग्री के सापेक्ष कहीं और विकसित होकर इस सामग्री को अपने योग्य नियोजित करती है। राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक दशाएं किसी जाति को अपने इतिहास (राजनैतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं सामाजिक) लिखने की प्रेरणा प्रदान करती है।

अभ्यास प्रश्न

साहित्य का इतिहास लेखन इसलिए जरुरी है क्योंकि -

1 . (सही उत्तर के सामने सही √ का निशान लगाएं)

(क) हमें स्वयं के अतीत के बारे में जानकारी मिल सके .

(ख) हमें स्वयं के अतीत के साथ-साथ वर्तमान की पहचान कर सकें.

(ग) हमें इतिहास-विषय में अच्छे अंक मिल सकें . फ्क

(घ) इनमें से कोई नहीं .

2 . सही विकल्प चुनिए

(क) कविता कौमुदी का सम्बन्ध किस से है

(1)रामचंद्र शुक्ल (2)नामवर सिंह (3)ग्रियर्सन (4)रामनरेश त्रिपाठी

(3) परिचयियाँ के लेखक हैं

(1) नाभादास (2) कबीर (3)अनंतदास (4)रैदास

4 . हिन्दी साहित्येतिहास लेखन की स्रोत सामग्री पर एक संक्षिप्त टिपण्णी लिखिए (पांच पंक्तियों में उत्तर दें)

.....

.....

.....

.....

.....

2.4 हिन्दी साहित्येतिहास की परम्परा (एक)

2.4.1 गार्सां द तासी कृत 'इतिहास'

(इस्त्वार द ल लितेरेत्यूर ऐंदुइ ए ऐंदुस्तानी, 1839)- हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन का प्रथम प्रयास एक फ्रांसीसी विद्वान गार्सां द तासी (1794-1878) द्वारा किया गया। फ्रांस के प्रसिद्ध बन्दरगाह मारसेल में जन्में इस अध्येता को फ्रेंच, अंग्रेजी, लैटिन के अलावा फारसी, अरबी, तुर्की, उर्दू और संस्कृत भाषा की भी खासा ज्ञान था। पारसी विश्वविद्यालय में उर्दू के प्रोफेसर गार्सा द तासी ने 'इस्त्वार द ल लितेरेत्यूर ऐंदुइ ए ऐंदुस्तानी' के नाम से हिंदुई और हिन्दुस्तानी का इतिहास फ्रेंच भाषा में लिखा था। इसके प्रथम संस्करण का प्रथम भाग 1839 ई. में, जिसमें मात्र कवि परिचय था, प्रकाशित हुआ दूसरा भाग कुछ समय पश्चात् 1847 ई. में प्रकाशित हुआ। इस दूसरे भाग में फ्रेंच भाषा में कवियों की रचनाओं के उदाहरण संकलित थे। यह प्रथम संस्करण ग्रेट ब्रिटेन और आयरलैण्ड की ओरिएंटल ट्रांसलेशन कमेटी द्वारा प्रकाशित किया गया था। उर्दू से लगाव होने के नाते इस ग्रंथ में उल्लिखित 738 कवि और लेखकों में से मात्र 72 हिंदी और उसकी बोलियों के कवि माने जा सकते हैं। "इस पुस्तक का द्वितीय संस्करण तीन भागों में प्रकाशित हुआ। प्रथम एवं द्वितीय भाग सन् 1870 तथा तृतीय भाग 1871 में पेरिस से प्रकाशित हुआ। तीनों भागों में क्रमश: एक हजार दो सौ तेइस, एक हजार दो सौ और आठ सौ एक कवियों और लेखकों का उल्लेख है।"

खोज के पश्चात् भी इस ग्रंथ की मूल प्रति उपलब्ध नहीं हो पाई परन्तु सौभाग्य से हिंदी जगत के प्रख्यात विद्वान, **डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय** द्वारा तासी के इस ऐतिहासिक ग्रंथ के सभी भागों की मूल भूमिकाओं एवं 358 कवि और लेखकों का परिचय **'हिन्दुई साहित्य का इतिहास' हिन्दुस्तानी एकेडेमी, उत्तरप्रदेश इलाहाबाद** से सन् **1953** में किया गया है।

2.4.2 मौलवी करीमुद्दीन एवं एफ.फैलन कृत 'इतिहास'

(तबकातुश्शुअरा 1848) - इस ग्रंथ को मौलवी करीमुद्दीन नामक व्यक्ति ने 1848 में देहली कॉलेज द्वारा प्रकाशित करवाया। इसे 'तबकातुश्शुअरा' अथवा 'तजकिरा-ई-शुअरा-ई-हिंदी' के नाम से जाना जाता है। दुर्भाग्यवश इस ग्रंथ का मूल, अनुवाद अथवा 'इसका कोई संक्षिप्त भाग' खोजने पर भी न मिल सका। विभिन्न विद्वानों द्वारा छिटपुट लेखों के आधार पर इस ग्रंथ के विषय में लिखा गया है। इन लेख-निबंधों द्वारा इतना ही ज्ञात हुआ है कि अन्तत: यह पुस्तक तजकिरा-ई-शुअरा-ई-हिंदी' 'तजकिरा' अर्थात् जिक्र (चर्चा) मात्र ही है। इस पुस्तक के मुखपृष्ठ पर इंग्लिश में जो विवरण मुद्रित है वो इसके इतिहास (हिस्ट्री) होने की बात कहता है'' 'ए हिस्ट्री ऑफ उर्दू पोएटस चीफली ट्रांसलेटेड फ्राम इस्त्वार द ल लितरेत्यूर ऐंदुई ऐ ऐंदुस्तानी', वाई.एफ.फैलन ऐन्ड मौलवी करीमुद्दीन विथ ऐडिशन्स। देहदी कॉलेज, 1848''। हालॉकि मूलत: यह ग्रंथ तासी की इतिहास पुस्तक का अनुवाद है परन्तु बिहार शिक्षा विभाग के इंस्पैक्टर वाई.एफ.फैलन ने इसका अनुवाद उर्दू में किया जिसमें मौलवी करीमुद्दीन ने अपनी ओर से बहुत कुछ तोड़ा और जोड़ा है। यह जोड़-तोड़ इतनी अधिक है कि स्वयं तासी ने अपनी पुस्तक के द्वितीय संस्करण में इसका उपयोग किया है और इसे एक स्वतंत्र ग्रंथ के रूप में मान्यता भी दी है।

2.4.3 शिव सिंह सेंगर कृत 'इतिहास'

(शिवसिंह सरोज, 1878) - शिवसिंह सेंगर द्वारा लिखा यह ग्रंथ अपने वृहद कवि संकलन के बतौर अपना महान ऐतिहासिक महत्व रखता है। डॉ.किशोरीलाल गुप्त हालाँकि इसे भी इतिहास ग्रंथ नहीं मानते परन्तु फिर भी वे इसे हिंदी साहित्येतिहास का प्रस्थान बिंदु मानते है।

'शिवसिंह पुलिस के सरकिल इंस्पेक्टर थे और प्राचीन काव्य में इनकी अभिरूचि थी। 'सरोज' में 838 कवियों की कविताओं के प्राय: दो हजार नमूने दिए गए हैं। काव्य संग्रह के उपरांत ग्रंथ के उत्तरार्द्ध में, प्राय: 125 पृष्ठों में सेंगर जी ने 1003 कवियों का जीवन चरित्र भी अकारादि क्रम से दिया है। इन 1003 कवियों में से 687 की तिथियॉ भी दी गई हैं, 53 कवि 'विद्यमान' कहे गए हैं, 263 कवि तिथिहीन हैं।''

अपनी विशाल सामग्री के कारण बाद के इतिहासकारों (जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन, मिश्रबंधु) के साथ अब तक भी 'शिवसिंह सरोज' का महत्व बना हुआ है, लेकिन ठेठ ऐतिहासिक दृष्टि के आभाव के कारण अन्तत: शिवसिंह सरोज भी इतिहास ग्रंथ नहीं है। वे ग्रंथ की भूमिका में ''भाषा काव्य निर्णय'' शीर्षक से हिंदी भाषा का मूल खोजने का प्रयत्न करते हैं। इसी स्मृति सम्पन्न प्रयत्न के चलते वे हिंदी की अपनी चेतना को लेकर विक्रम सवंत् 770 में विद्यमान पुंड कवि तक पहुँचते हैं।

2.4.4 सर जान अब्राहम ग्रियर्सन कृत 'इतिहास'

(द माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान, 1889) - भाषा – वैज्ञानिक, इतिहासज्ञ और प्राच्य विद्याविशारद के रूप में सर जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन (1851-1941) का नाम सर्वप्रसिद्ध है। बिहारी भाषाओं के सात व्यकरण (1883-1887) लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इण्डिया (11 जिल्दों में) जैसे महान और वृहदकाय ग्रंथ के अलावा इन्होंने 'द मॉर्डन वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान' (1889) जैसे ग्रंथ का भी प्रणयन किया। सन् 1886 में डॉ. ग्रियर्सन ने सप्तम अन्तर-राष्ट्रीय प्राच्य विद् सम्मेलन, वियना में हिन्दुस्तान (हिंदी भाषा-भाषी प्रदेश) के मध्यकालीन भाषा साहित्य और तुलसी पर एक लेख पढ़ा था, (मूल लेख-द मिडीवल वर्नाक्यूलर लिट्रेचर ऑफ हिन्दुस्तान विद स्पेशल रेफ्रंस टु तुलसीदास) बहाने समूने हिंदी परिदृश्य पर लिखे गई इस लेख को सम्मेलन एवं उसके पश्चात् भी विद्वानों ने खूब सराहा और उसे अधिक स्थिर रूप देने को कहा। इसी का परिणाम यह हुआ कि ग्रियर्सन ने **'द मार्डन वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान'** लिखा। जिसका प्रथम प्रकाशन 1888 में 'रायल एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल' की संख्या एक में हुआ। एक वर्ष पश्चात् यह वृहद निबंध पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित हुआ। ग्रियर्सन के ग्रंथ का अपना ऐतिहासिक महत्व है।

ग्रियर्सन के ग्रंथ में पहली बार इतिहास बोध को रेखांकित किया जा सकता है। डॉ0 लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय लिखते हैं "यद्यपि ग्रियर्सन का यह दावा है कि उन्होंने लगभग सभी 952 कवियों और लेखकों की रचनाओं को पूर्ण या आशिंक रूप में, या नमूनों के रूप में देखा था, तो भी, तासी और सेंगर के ग्रंथों की भॉति उनके ग्रंथ में बहुत से कवियों और लेखकों के नाम, जन्म–तिथि, निवासस्थान, आदि के साथ अध्यायों के अंत में पूरक अंश के रूप में अथवा विविध शीर्षक के अन्तर्गत दिए गए हैं। इसीलिए उन्होंने अपने ग्रंथ को विधिवत् लिखा गया साहित्येतिहास कहने में संकोच किया है। उसकी सबसे बड़ी विशेषता काल-विभाजन है।"

ग्रियर्सन के इतिहास लेखन में कुछ ठोस विशेतषताएं भी हैं जिन्हें स्वीकार करके ही हिंदी साहित्येतिहास की ऐतिहासिकता पूर्ण होती है। दरअसल सर जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन के पास अपनी

व्यक्तिगत खोज और गहन अध्ययनशील प्रवृत्ति के चलते हिन्दुस्तान की भाषा एवं इसके साहित्य को समझने, इसके भीतर बहने वाली विभिन्न धाराओं को जॉचने की प्रखर संभावनाएं मौजूद थीं।

2.4.5 मिश्रबन्धु कृत 'इतिहास'

(**मिश्रबंधु विनोद, 1913**) - इटौंजा, जिला लखनऊ निवासी पं.गणेश बिहारी मिश्र, रावराजा डॉक्टर श्याम बिहारी मिश्र (1873-19 फरवरी 1947) डी.लिट्., साहित्य वाचस्पति पं.शुकदेव बिहारी मिश्र तीनों सगे भाई थे एवं ''मिश्रबंधु'' नाम से संयुक्त रूप से पुस्तकें लिखा करते थे। दिसंबर 1901 में इन्होंने 'सरस्वती' नामक प्रसिद्ध पत्रिका के एक अंक में 'हिंदी-साहित्य का इतिहास' लिखने की बात कही थी। सन् 1900 में काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने हस्तलिखित हिंदी ग्रंथों की खोज का कार्य प्रारम्भ किया। 1900 से 1908 तक खोज कार्य के निरीक्षक बाबू श्यामसुंदर दास थे। 1909 से 1916 तक इसके निरीक्षक श्याम बिहारी मिश्र एवं शुकदेव बिहारी मिश्र हुए। इस खोज कार्य से मिश्र बंधुओं को इतिहास लिखने में बहुत सहायता हुई। इस ग्रंथ का प्रथम संस्करण संवत् 1970 (सन् 1913) में प्रकाशित हुआ। उस समय इसमें तीन भाग, 1593 पृष्ठ तथा 3,757 कवियों एवं लेखकों के विवरण थे। कुल मिलाकर 4591 कवियों एवं लेखकों के विवरण समालोचनाओं एवं चक्रों में दिए गए थे। जब तक चतुर्थ भाग निकले, उसके पूर्व ही प्रथम भाग का तृतीय संस्करण, सं. 1986 (सन् 1929) में निकल गया।

इस प्रकार कई स्तरों से कवियों एवं लेखकों के विषय में सूचनाएं संग्रहित करने के पश्चात् 'मिश्रबंधुओं' ने एक बृहद्काय ग्रंथ का निर्माण किया जिसे स्वयं उन्होंने **'मिश्रबंधु विनोद' अथवा 'हिंदी साहित्य का इतिहास तथा कवि-कीर्तन'** कहना उचित समझा।

मिश्रबंधुओं ने हिंदी साहित्य के इतिहास को निम्नांकित कालों में विभाजित किया है। विषय-वस्तु के आधार पर यह काल-विभाजन 'मिश्रबंधु विनोद' के विभिन्न भागों में व्याप्त है।

पूर्व प्रारंभिक हिंदी सं. 700 से 1347 तक

चंद पूर्व हिंदी-सं. 700-1200

रासो काल – सं. 1201-1347

उत्तर प्रारंभिक हिंदी –सं. 1348-1444

उत्तर प्रारंभिक हिंदी-सं. 1348-1444

माध्यमिक हिंदी

पूर्व माध्यमिक-हिंदी-सं. 1444-1560

प्रौढ़ माध्यमिक हिंदी-सं. 1561-1680

अष्टछाप-1561-1630

सौरकाल – 1561 -1630

गोस्वामी तुलसीदास तथा तुलसीदास की हिंदी-सं. 1631-1680

पूर्व तुलसीकाल- 1631-1645

माध्यमिक तुलसीकाल – 1646-1670

अंतिम तुलसीकाल – 1671-1680

(मिश्रबंधु विनोद-द्वितीय भाग सं.-1681-1889)

अलंकृत हिंदी

पूर्वालकृंत प्रकरण- 1681-1790

पूर्वालकृंत हिंदी

महाकवि सेनापति

सेनापति काल 1681-1706

बिहारी काल 1707-1720

भूषण काल 1721-1750

आदिम देवकाल 1751-1771

माध्यमिक देवकाल 1772-1790

उत्तरालंकृत प्रकरण 1791-1889

उत्तरालंकृत हिंदी

दास काल 1791-1810

सूदन काल 1811-1830

रामचंद्रकाल 1839-1855

बेनी प्रवीन काल 1856-1875

पद्माकर काल 1876-1889

(मिश्रबंधु विनोद – तृतीय भाग 1890-1955)

अज्ञात काल-उन प्राचीन कवियों का अकारादि क्रम से वर्णन, जिनका काल निर्धारण नहीं हो सका।

परिवर्तन प्रकरण 1890-1925

परिवर्तन कालिक हिंदी

द्विजदेव काल 1890-1915

दयानंद काल 1916-1926

वर्तमान काल – 1926

वर्तमान हिंदी एवं पत्रपत्रिकाएं 1926-1945

पूर्व हरिश्चंद्र काल-1926-1935

उत्तर हरिश्चंद्र काल – 1936-1945

(मिश्रबंधु विनोद –चतुर्थ भाग- सं. 1946-1990)

पूर्व नूतन परिपटी 1945-1960

उत्तर नूतन परिपाटी 1961-1994

प्रथम भाग – 1960-1975

द्वितीय भाग आजकल 1976-1994 तक (सभी तिथियाँ विक्रम संवत् हैं।)

इस प्रकार हम देखते हैं कि अपनी निर्धारित सीमा के भीतर रहते हुए मिश्रबंधुओं ने सम्पूर्ण हिंदी साहित्य का एक पूर्ण चित्र प्रस्तुत करने का प्रयत्न अवश्य किया था। हालॉकि मिश्रबंधुओं से पूर्व जिस तरह ग्रियर्सन ने अपनी मानसिकता के अनुसार एक काल-विभाजन किया था उसी प्रकार मिश्रबंधुओं ने भी हिंदी की क्रमश: विकसित होती हुई स्वाभाविक चेतना को कालानुसार विभाजित किया। काल-विभाजन की यही चेतना आगे चलकर आचार्य शुक्ल के इतिहास में सर्वमान्य रूप ग्रहण करती है।

2.4.6 एडविन ग्रीव्ज कृत 'इतिहास'

(ए स्केच ऑफ हिंदी लिटरेचर-एड्विन ग्रीव्स,1918) - इसके पश्चात् एक अंग्रेज विद्वान एड्विन ग्रीव्ज ने 1918 में 'ए स्केच ऑफ हिंदी लिटरेचर' प्रकाशित किया। अपनी इस पुस्तक में उन्होंने यथासंभव पिछली सारी साहित्यिक सामग्री से सहायता ली। मूल रूप से यह पुस्तक 112 पृष्ठों की

एक छोटी-सी रचना है। सम्पूर्ण पुस्तक आठ भागों में विभाजित है (मूल रूप से यह पुस्तक नहीं देखी गई है डॉ.किशोरीलाल द्वारा 'हिंदी साहित्य का रेखांकन' नाम से इसका अनुवाद 1995 में हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ है।) श्री ग्रीव्ज ने बेहद संक्षिप्तता के साथ इस पुस्तक में हिंदी साहित्य का सामान्य परिचय प्रस्तुत किया है। श्री ग्रीव्ज ने हिंदी साहित्य के इतिहास को पाँच भागों में विभाजित किया है

1. आदिकाल	-	सन् 1400 तक
2. रचनात्मक काल	-	1400-1580
3. विस्तार काल	-	1580-1700
4. स्थिर काल	-	1700-1800
5. पुनर्जागरण और परिवर्तनकाल	–	1800 से वर्तमान

श्री ग्रीव्ज न केवल भाषा के विषय में बेहद साधारण विचार प्रस्तुत करते हैं अपितु हिंदी साहित्य के जनमान्य महान कवियों विद्यापति, खुसरों, कबीर, सूर और अन्य बड़े कवियों पर बहुत चलते ढंग से विचार करते हैं।

2.4.7 एफ.ई. के कृत 'इतिहास'

(ए हिस्ट्री ऑफ हिंदी लिट्रेचर, 1920) - 116 पृष्ठों की यह पुस्तक भूमिका, मानचित्र, संदर्भ ग्रंथ और नामानुक्रमिका के अतिरिक्त हिंदी साहित्य के इतिहास को कुल बारह अध्यायों में प्रस्तुत करती है।

1. हिंदी भाषा और उसकी पड़ोसी भाषाएं
2. हिंदी साहित्य का सामान्य सर्वेक्षण
3. आरम्भिक चारण युग के इतिवृत्त (1150-1400 ई.)
4. आरम्भिक भक्त कवि (1400-1550 ई.)
5. मुगल दरबार और उसका हिंदी साहित्य पर कलात्मक प्रभाव (1550-1800 ई.)
6. तुलसीदास और रामसम्प्रदाय (1550-1800 ई.)
7. कबीर के उत्तराधिकारी (1550-1800 ई.)
8. कृष्ण सम्प्रदाय (1550-1800 ई.)

9. चारण और फुटकल साहित्य (1550-1800 ई.)

10. आधुनिक काल (1800 ई.)

11. हिंदी साहित्य की सामान्य विशेषताएँ

12. वर्तमान स्थिति और हिंदी साहित्य का भविष्य

अभ्यास प्रश्न

5 . निम्नलिखित कथनों के सामने सत्य/असत्य लिखिए

(क) द मार्डन वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ़ हिन्दुस्तान के लेखक गार्सां द तासी हैं

(ख) आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा लिखित इतिहास ग्रन्थ का प्रकाशन 1902 में हुआ।

6. (लघु उत्तरीय प्रश्न दस पंक्तियों में उत्तर दें)

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार साहित्य का इतिहास किसे कहते हैं ?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

7 . अति लघु उत्तरीय प्रश्न (क)मिश्र बंधुओं ने अपने साहित्येतिहास ग्रन्थ को किस नाम से पुकारा है

8 . निम्नलिखित इतिहास ग्रंथों को कालक्रम के अनुसार लिखिए

(क) द मार्डन वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ़ हिन्दुस्तान

(ख) तबकातुश्शुअरा

(ग) मिश्रबंधु विनोद

(घ) ए स्केच ऑफ़ हिन्दी लिटरेचर

2.5 हिन्दी साहित्येतिहास की परम्परा (दो)

2.5.1 आचार्य रामचंद्र शुक्ल कृत 'इतिहास'

(हिन्दी साहित्य का इतिहास, 1929)- आचार्य रामचंद्र शुक्ल (1884-1941) की इतिहास दृष्टि को अधिकतर मध्ययुग, विशेषकर भक्तिकाल के परिप्रेक्ष्य में ही महत्वपूर्ण माना जाता है। यह बात अपनी ऐतिहासिकता के साथ सत्य भी है। भक्तिकाल के उदय और उसकी पृष्ठभूमि से लेकर उसकी साहित्यिक आलोचना में आचार्य शुक्ल वस्तुत: अपनी प्रतिभा का समग्र देते प्रतीत होते हैं।

काशी हिंदू विश्वविद्यालय में 1921 ई. से स्नातक और स्नातकोत्तर स्तर पर हिंदी के अध्ययन-अध्यापन का शुभारंभ हुआ। छात्रों के लिए हिंदी साहित्य के एक इतिहास की आवश्यकता महसूस हुई। आचार्य शुक्ल ने स्वयं स्वीकार किया है कि उस समय उन्होंने छात्रों के उपयोग के लिए कुछ संक्षिप्त नोट तैयार किये थे जिनमें परिस्थिति के अनुसार शिक्षित जन समूह की बदलती हुई प्रवृत्तियों को लक्ष्य करके हिंदी साहित्य के इतिहास के काल विभाग और रचना की भिन्न–भिन्न शाखाओं के निरूपण का एक कच्चा ढांचा खड़ा किया गया था। कार्य में गति आई 'हिंदी शब्द सागर' के समापन से। स्वयं आचर्य शुक्ल के अनुसार ''हिंदी शब्द-सागर'' समाप्त हो जाने पर उसकी भूमिका के रूप में भाषा और साहित्य का विकास देना भी स्थिर किया गया। अत: एक नियत समय के भीतर ही यह इतिहास लिखकर पूरा करना पड़ा।'' चन्द्रशेखर शुक्ल के अनुसार आचार्य शुक्ल को 'हिंदी शब्द सागर' की भूमिका के लिए 'हिंदी साहित्य का विकास, लिखकर पूरा करने में पूरे आठ महीने लगे। अन्तत: यह 'विकास' शब्दसागर के साथ जनवरी 1929 ई. में प्राकाशित हुआ "किन्तु इस 'विकास' के कुछ अंशों का प्रकाशन 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' में पहले ही 1928 ई. में ही धारावाहिक रूप से हो चुका था।"

अपने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' के बिलकुल आरंभ में वे घोषित तौर पर बता देते हैं कि उनके लिए इतिहास क्या है। आचार्य शुक्ल लिखते हैं : ''**जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। आदि से अंत तक इन्हीं चित्त्वृत्तियों की परम्परा को परखते हुए साहित्य परम्परा के साथ उनका सामंजस्य दिखाना ही 'साहित्य का इतिहास' कहलाता है। जनता की चित्तवृत्ति बहुत कुछ राजनीतिक, सामाजिक, सांप्रदायिक तथा धार्मिक परिस्थति के अनुसार होती है। अत: कारण स्वरूप इन परिस्थितियों का किंचित दिग्दर्शन भी साथ ही साथ आवश्यक होता है।''** आचार्य शुक्ल मानते हैं कि साहित्य जनता की चित्त्वृत्तियों का संचित प्रतिबिंब होता है, जैसे-जैसे चित्तवृत्ति बदलती है वैसे-वैसे साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता जाता है। साहित्य एवं समाज के इन सामान्तर परिवर्तनों का सामंजस्यपूर्ण आकलन ही 'साहित्य का इतिहास' कहलाता है। साहित्य के इतिहास की उपेक्षा करने का मतलब है, इन संबंधों को जड़ बना देना,

साहित्यिक यथार्थ के वास्तविक स्वरूप की अनदेखी करना। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा प्रतिपादित हिन्दी साहित्य का काल-विभाजन निम्न प्रकार है-

आदिकाल	**(वीरगाथाकाल,**	**सं. 1050-1375)**
पूर्व मध्यकाल	**(भक्तिकाल,**	**सं. 1375-1700)**
उत्तर मध्यकाल	**(रीतिकाल,**	**सं. 1700-1900)**
आधुनिक काल	**(गद्यकाल,**	**सं. 1900-1984)**

2.5.2 हिन्दी साहित्येतिहास के अन्य महत्वपूर्ण ग्रन्थ

1. हिंदी साहित्य का इतिहास (1931)-रमाशंकर शुक्ल 'रसाल'
2. हिंदी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास (1932)- सूर्यकान्त शास्त्री।
3. हिंदी भाषा और साहित्य का विकास (1934)-अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'।
4. हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (1938)-डा. रामकुमार वर्मा।
5. हिंदी साहित्य की भूमिका (1940)- आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी।
6. खड़ी बोली: हिंदी साहित्य का इतिहास (1941)-ब्रजरत्न दास।
7. हिंदी साहित्य (1948)-डा.रामरतन भटनागर।
8. हिंदी साहित्य का सुबोध इतिहास (1952)-गुलाबराय।
9. हिंदी साहित्य (1952)-आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी
10. हिंदी साहित्य का वृहद् इतिहास (16 भागों में)-सं.सुधाकर पाण्डेय (1960 से)।
11. हिंदी साहित्य का परिचय (1961)-चतुर सेन शास्त्री।
12. हिंदी साहित्य का प्रमाणिक इतिहास (1962) गंगाधर मिश्र।
13. हिंदी साहित्य का सरल इतिहास (1964)-डा.लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय।
14. हिंदी साहित्य का आर्दश इतिहास (1965)-डॉ.रामगोपाल शर्मा 'दिनेश'।
15. हिंदी साहित्य के अस्सी वर्ष (1954)-शिवदानसिंह चौहान
16. हिंदी साहित्य का प्रवृत्यात्मक इतिहास (1967)-डा.प्रताप नारायण टण्डन।
17. हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास (1968)- डा. गणपतिचन्द्र गुप्त।
18. हिंदी साहित्य एक परिचय (1968)-डा.त्रिभुवन सिंह।

19. हिंदी भाषा और साहित्य का इतिहास (1969)-डा.भगवतशरण चतुर्वेदी।

20. हिंदी भाषा का नया इतिहास (1969)-डा.रामखेलावन पाण्डेय।

21. हिंदी साहित्य एक ऐतिहासिक अध्ययन (1969)-डा.रतिभानु सिंह नाहर।

22. हिंदी साहित्य का इतिहास (1970)-डा.लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय

23. हिंदी साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास (1971)- डा.रामचन्द्र आनंद।

24. हिंदी साहित्य का अद्यतन इतिहास (1971)- डा.मोहन अवस्थी।

25. हिंदी साहित्य का विकास (1971)-वासुदेव शर्मा।

26. हिंदी साहित्य का मानक इतिहास (1973)-डा.0 लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय।

27. हिंदी साहित्य का इतिहास (1973) सं.डा.नगेन्द्र।

28. हिंदी साहित्य का अतीत (1960)- विश्वानाथप्रसाद मिश्र

29. हिंदी साहित्य का इतिहास (1973) प्रताप नारायण टण्डन।

30. हिंदी साहित्य का इतिहास (1973) डा.राममूर्ति त्रिपाठी।

31. हिंदी साहित्य का सर्वेक्षण (1977) विश्वंभर नाथ मानव।

32. हिंदी साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास (1982)- डा.वासुदेव सिंह।

33. हिंदी साहित्य का प्रवृत्तिपरक इतिहास (1985)- डा.रामप्रसाद मिश्र।

34. हिंदी साहित्य का विवेकात्मक इतिहास (1986)- डा.तिलक राज शर्मा।

35. हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास (1986)-रामस्वरूप चतुर्वेदी।

36. हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास (1996)-बच्चन सिंह।

इन सभी इतिहास-ग्रंथों ने युगीन परिस्थितियों के अनुसार हिंदी साहित्य के इतिहास को जॉचने का प्रयास किया। इन साहित्येतिहासों के अलावा अन्य कई-कई ऐसी साहित्यिक कृतियॉ प्रकाश में आई जिन्होंने साहित्य का समग्र इतिहास तो प्रस्तुत नहीं किया परन्तु अपनी ऐतिहासिक चेतना के बल पर हिंदी समाज को गहन इतिहास -बोध अवश्य प्रदान किया। समय-समय पर लिखे ऐसे ग्रंथ एक तरफ जहाँ हिंदी साहित्य की ऐतिहासकता को प्रस्तुत कर रहे थे वहीं अपने नए निष्कर्षों के आधार पर परम्परागत इतिहास बोध को बदल भी रहे थे। नंददुलारे वाजपेयी, राहुल सांकृत्यायन, डा.नगेन्द्र, अज्ञेय, मुक्तिबोध, रामविलास शर्मा, नामवर सिंह, विजयदेवनारायण साही, विद्यानिवास मिश्र, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, रमेशचन्द्र शाह आदि कुछ प्रमुख नाम इस संबंध में लिए जा सकते हैं।

अभ्यास प्रश्न

9 . अति लघु उत्तरीय प्रश्न

(क) मिश्र बंधुओं द्वारा लिखित हिन्दी साहित्येतिहास पुस्तक का क्या नाम है

(ख) हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा लिखित हिन्दी साहित्य की भूमिका का प्रकाशन किस वर्ष हुआ ?

(ग) ग्रियर्सन लिखित हिन्दी साहित्येतिहास विषयक पुस्तक का प्रकाशन किस वर्ष हुआ ?

10 . कालम '1'और '2' का सही मेल कीजिए

(क) रामचंद्र शुक्ल	शिव सिहं सरोज
(ख) रामकुमार वर्मा	हिन्दी साहित्य का इतिहास
(ग) शिव सिंह सेंगर	हिन्दी सहित्य का दूसरा इतिहास
(घ) बच्चन सिंह	हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास

11. लघु उत्तरीय प्रश्न .

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के पश्चात प्रकाशित दस प्रमुख हिन्दी साहित्येतिहास ग्रंथों एवं उनके लेखकों के नाम लिखिए

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2.6 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप यह जान चुके हैं कि -

- हिन्दी साहित्येतिहास की लेखन परम्परा का उदभव एवं विकास कैसे हुआ
- हिन्दी साहित्येतिहास लेखन परम्परा के विकास के लिए कौन-कौन से साहित्यिक एवं गैरसाहित्यिक स्रोतों की भूमिका महत्वपूर्ण है।
- हिन्दी साहित्येतिहास की परम्परा का आरंभ कब हुआ।

- हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन की परम्परा उपनिवेशवादी विचारधारा से किस प्रकार प्रभावित हुई।
- हिन्दी साहित्येतिहास लेखन परम्परा का भारतीय संदर्भ क्या था, हिन्दी लेखकों द्वारा हिन्दी साहित्येतिहास लेखन में क्या गुणात्मक परिवर्तन किए गए।
- हिन्दी साहित्येतिहास लेखन की सम्पूर्ण परम्परा का विकास कैसे हुआ।

H वर्तमान तक हिन्दी साहित्येतिहास परम्परा की दशा एवं दिशा क्या है।

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. हम स्वयं के अतीत के साथ-साथ वर्तमान की पहचान कर सकें. √

2 . रामनरेश त्रिपाठी

3. अनंतदास

4 . हिन्दी साहित्येतिहास लेखन की स्रोत सामग्री पर एक संक्षिप्त टिपण्णी लिखिए
(पांच पंक्तियों में उत्तर दें)

उत्तर : .....
.....
.....
.....
.....

5. (क) (असत्य)
(ख). (असत्य)

6. (लघु उत्तरीय प्रश्न दस पंक्तियों में उत्तर दें)
आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार साहित्य का इतिहास किसे कहते हैं ?

उत्तर : .....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....

.....

7 . हिन्दी साहित्य का इतिहास तथा कवि कीर्तन

8 . (क) तबकातुश्शुअरा 1848
(ख) द मार्डन वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ़ हिन्दुस्तान 1889
(ग) मिश्रबंधु विनोद 1913
(घ) ए स्केच ऑफ़ हिन्दी लिटरेचर 1918

9 . (क) मिश्रबंधु विनोद 1913
(ख) 1940
(ग) 1889

10 . (क) (ख)
(ख) (घ)
(ग) (क)
(घ) (ग)

2.8 शब्दावली

साहित्येतिहास	-	साहित्य का इतिहास
चित्तवृत्ति	-	मन का भाव
औपनिवेशिक	-	उपनिवेश सम्बन्धी
इतिवृत्तात्मक	-	घटना प्रधान
परिप्रेक्ष्य	-	सन्दर्भ
प्रतिपादन	-	किसी भी विषय का सप्रमाण कथन,बोध कराना
संचित	-	एकत्र , जमा किया हुआ
मनो भूमि	-	मन का स्तर

2.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. पाण्डेय डॉ.मैनेजर, *साहित्य और इतिहास दृष्टि,* 1981, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली।

2. शुक्ल आचार्य रामचंद्र, *हिंदी साहित्य का इतिहास*, 2007, लोक भारती प्रकाशन,

3. मौर्य डॉ.देवलाल, *हिंदी साहित्य का इतिहास-दर्शन और रामचंद्र शुक्ल,* 1993, इलाहाबाद।

4. द्विवेदी आचार्य हजारी प्रसाद, *हिंदी साहित्य की भूमिका*, 1940 राजकमल प्रकाशन दिल्ली।

5. वार्ष्णेय लक्ष्मीसागर, *इतिहास और साहित्येतिहास,* 1984, भारतीय साहित्य प्रकाशन, मेरठ।

6. ठाकुर, समीक्षा, *आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के इतिहास की रचना प्रक्रिया*, 1996, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद।

7. सिंह बच्चन, *हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास,* 1996, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली।

8. डॉ.नगेन्द्र, *हिंदी साहित्य का इतिहास* 1973, मयूर प्रकाशन नई दिल्ली।

9. चतुर्वेदी रामस्वरूप, *हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास* 1986, राजकमल प्रकाशन दिल्ली।

10. तासी गार्सा द, *हिंदुई साहित्य का इतिहास*, भूमिका, 1953, हिन्दुस्तानी एकेडमी इलाहाबाद।

11. ग्रियर्सन, *हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास*, 1961, हिन्दुस्तानी एकेडमी इलाहाबाद।

12. राजे, सुमन, *हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास*, 2004, भारतीय ज्ञान पीठ नई दिल्ली।

13. चतुर्वेदी रामस्वरूप, *इतिहास और आलोचक दृष्टि*, 1998, तक्षशिला प्रकाशन नई दिल्ली।

14. सिंह त्रिभुवन, *साहित्यिक निबंध*, 1976, हिन्दी प्रचारक संस्थान वाराणसी।

15. नलिन विलोचन शर्मा – साहित्यिक का इतिहास दर्शन, सं. 2016, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना।

16. बेदी डा.हरमहेन्द्र सिंह, *हिन्दी साहित्येतिहास पाश्चात्य स्रोतों का अध्ययन,* 1985, प्रतिभा प्रकाशन होशियारपुर।

2.10 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, 1929- आचार्य रामचंद्र शुक्ल, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद।

2. हिंदी साहित्य के अस्सी वर्ष (1954)-शिवदानसिंह चौहान, राजकमल प्रकाशन दिल्ली।

3. हिंदी साहित्य का इतिहास (1973) सं. डा.नगेन्द्र, मयूर प्रकाशन नई दिल्ली।

4. हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास (1986)-रामस्वरूप चतुर्वेदी, राजकमल प्रकाशन दिल्ली।

5. हिंदी साहित्य का अतीत (1960)- विश्वानाथप्रसाद मिश्र, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली।

6. हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास (1996)-बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली।

7. साहित्य और इतिहास दृष्टि (1981) वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।

8. हिंदी साहित्य की भूमिका (1940)- आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन दिल्ली।

9. हिंदी साहित्य का वृहद् इतिहास (16 भागों में)-सं.सुधाकर पाण्डेय (1960 से)।

10. साहित्य का इतिहास दर्शन (सं. 2016) नलिन विलोचन शर्मा, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना।

2.11 निबंधात्मक प्रश्न

(1) हिन्दी साहित्येतिहास के उद्भव एवं विकास पर एक निबंध लिखिए।

(2) हिन्दी साहित्येतिहास का संक्षिप्त परिचय देते हुए शुक्ल पूर्व हिन्दी के प्रमुख साहित्येतिहासों का परिचयात्मक विवेचन कीजिए।

(3) आचार्य रामचंद्र शुक्ल के इतिहास का विवेचन करते हुए शुक्लोत्तर युग के प्रमुख इतिहास ग्रंथों का परिचय दीजिए।

इकाई 3 हिंदी साहित्येतिहास लेखन एवं नामकरण की समस्या

इकाई का स्वरूप

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 हिंदी साहित्येतिहास: प्रमुख समस्याएं
3.4 हिंदी साहित्येतिहास: नामकरण की समस्या
3.4.1 नामकरण की समस्या : आदिकाल
3.4.2 नामकरण की समस्या : भक्तिकाल
3.4.3 नामकरण : रीतिकाल
3.4.4 नामकरण की समस्या : आधुनिक काल
3.5 सारांश
3.6 शब्दावली
3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.8 संदर्भ ग्रंथ सूची
3.9 सहायक पाठ्य सामग्री
3.10 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

यह स्नातकोत्तर स्तर प्रथम प्रश्न पत्र, खण्ड एक की 'हिंदी साहित्य के इतिहास का स्वरूप एवं प्रक्रिया' की तीसरी इकाई है। इससे पूर्व के अध्ययन में आपने इतिहास एवं साहित्येतिहास की सम्पूर्ण प्रक्रिया एवं अन्तर्संबंधों की पृष्ठभूमि में हिंदी साहित्येतिहास की सम्पूर्ण परम्परा का परिचय प्राप्त किया।

प्रस्तुत इकाई में आप हिंदी साहित्येतिहास लेखन प्रणाली की आंतरिक समस्याओं को जान सकेंगे तथा हिंदी साहित्य के इतिहास की युग निर्धारण संबंधी समस्याओं का अध्ययन करेंगे।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् हिंदी साहित्य के इतिहास की महत्वपूर्ण समस्याओं के समाधान को वैचारिक गति मिलेगी जिससे हिंदी साहित्य के सभी युगों एवं उसके साहित्य को समझने में सहायता मिलेगी।

3.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- बता सकेंगे कि हिंदी साहित्येतिहास लेखन की मुख्य समस्याएं कौन-कौन सी हैं।
- बता सकेंगे कि हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन में युग निर्धारण क्या महत्व एवं प्रभाव है।
- बता सकेंगे विभिन्न साहित्येतिहासकारों ने युग निर्धारण की समस्या के समाधान एवं इसके सैद्धान्तिक प्रयोग हेतु क्या-क्या सुझाव प्रदान किए।
- युग-निर्धारण की समस्या का विश्लेषण करके साहित्य की ऐतिहासिक प्रक्रिया को सहजता एवं सरलता से समझ सकेंगे।

3.3 हिंदी साहित्येतिहास: प्रमुख समस्याएं

काल विभाजन एवं नामकरण साहित्य के इतिहास की महत्वपूर्ण समस्याएं हैं। इनके आधार सामान्यतः इस प्रकार माने गए है:

1. ऐतिहासिक कालक्रम के अनुसार: आदिकाल, मध्यकाल, संक्रांति-काल आधुनिक काल आदि।

2. शासक और उसके शासन-काल के अनुसार: ऐलिजाबेथ युग, विक्टोरिया-युग, मराठा-युग आदि।

3. लोकनायक और उसके प्रभाव-काल के अनुसार: चैतन्यकाल (बांग्ला) गांधी-युग (गुजराती) आदि।

4. साहित्य नेता एवं उसकी प्रभाव-परिधि के आधार पर: रवीन्द्र युग, भारतेन्दु-युग आदि।

5. राष्ट्रीय, सामाजिक अथवा सांस्कृतिक घटना या आंदोलन के आधार पर: भक्तिकाल, पुनर्जागरण काल, सुधार-काल युद्धोत्तर काल (प्रथम महायुद्ध के बाद का काल) स्वातन्तयोत्तर काल आदि।

6. साहित्यिक प्रवृत्ति के नाम पर: रोमानी युग, रीतिकाल, छायावाद युग आदि।

इस प्रसंग में पहला प्रश्न तो यही है कि इस प्रकार के विभाजन की आवश्यकता क्या है ? इसका स्तर स्पष्ट है और वह यह है वस्तु के समग्र रूप का दर्शन करने के लिए भी उसके अंगों का ही निरीक्षण करना पड़ता है। हमारी दृष्टि शरीर के विभिन्न अवयवों का अवलोकन करती हुई सम्पूर्ण व्यक्तित्व का दर्शन करती है। अवयवों को पृथक मानकर उनका निरीक्षण करना खण्ड-दर्शन है, किन्तु उनको व्यक्तित्व का अंग मानकर देखना समग्र दर्शन है और यही सहज विधि है क्योंकि निखयव रूप का दर्शन अपने आप में कठिन है। इसके अतिरिक्त जीवन या साहित्य को अखण्ड प्रवाह रूप मानने पर भी इस बात से तो इंकार नहीं किया जा सकता कि उसमें समय-समय पर दिशा परिवर्तन और रूप-परिवर्तन होता रहता है। दृष्टि की अपनी सीमाएं होती हैं। वह सभी कुछ एक साथ नहीं देख सकती, इसलिए अंगों पर होती हुई ही अंगी का अवलोकन करती है। अतः यह बात बराबर ध्यान में रखते हुए कि साहित्य की अखण्ड परम्परा का निरूपण ही इतिहास का लक्ष्य है, समय-समय पर उपस्थित दिशा-परिवर्तनों और रूप-परिवर्तनों के अनुसार विकास-क्रम का अध्ययन करना न सिर्फ गलत नहीं है, बल्कि जरूरी भी है।

यहाँ दूसरा विचारणीय प्रश्न यह है कि काल-विभाजन का सही आधार क्या हो सकता है ? वर्ग-विभाजन प्रायः समान प्रकृति और प्रवृत्ति के आधार पर किया जाता है। समान प्रकृति के अनेक पदार्थ मिलकर एक वर्ग बनाते हैं और इस प्रकार समप्रकृति के आधार पर किया जाता है। समान प्रकृति के अनेक पदार्थ मिलकर एक वर्ग बनाते है और इस प्रकार समप्रकृति के आधार पर अनेक वर्गों में विभक्त होकर अस्त-व्यस्त समूह व्यवस्थित रूप धारण कर लेता है। जिस प्रकार प्रवाह के अन्दर अनेक धाराएं होती है, उसी प्रकार साहित्य में भी अनेक प्रवृत्तियॉ होती है और इन प्रवृत्तियों का आदि-अन्त या उतार-चढ़ाव ही इतिहास का काल-विभाजन अर्थात् विभिन्न युगों की सीमाओं का निर्धारण करता है यह वर्ग विभाजन परिपूर्ण नहीं हो सकता, इसका रूप प्रायः स्थूल और आनुमानिक होता है, फिर भी समूह का पर्यवेक्षक करने में इससे बड़ी सहायता मिलती है। काल-

विभाजन का आधार भी समान प्रकृति और प्रवृत्ति ही होती है। जन जीवन का प्रवृत्तियों व रीति-रिवाजों की समानता के आधार पर सामाजिक इतिहास का काल-विभाजन होता है और राजनीतिक परिस्थितियों की समानता राजनीतिक इतिहास के काल-विभाजन का आधार बनती है इसी प्रकार साहित्यिक प्रवृत्तियों और रीति-आदर्शों का साम्यवैषम्य ही साहित्य के इतिहास के काल-विभाजन का आधार हो सकता है। समान प्रकृति और प्रवृत्तियों की रचनाओं का कालक्रम से वर्गीकृत अध्ययन कर साहित्य का इतिहासकार सम्पूर्ण साहित्य-सृष्टि का समवेत अध्ययन करने का प्रयत्न करता है।

इसी प्रकार नामकरण के पीछे भी कुछ न कुछ तर्क अवश्य रहता है अथवा रहना चाहिए। नाम की सार्थकता इसमें है कि वह पदार्थ के गुण अथवा धर्म का मुख्य तथा द्योतन कर सके। इस तर्क से किसी कालखण्ड का नाम ऐसा होना चाहिए जो उसकी मूल साहित्य चेतना को प्रतिबिम्बित कर सके। शासक के नाम पर भी कालखण्ड का नामकरण तभी मान्य हो सकता है या हुआ है जब उस शासक-विशेष के व्यक्तित्व ने प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रीति से साहित्य की गतिविधि को प्रभावित किया है। उधर साहित्यिक नेता भी युग विशेष की साहित्यिक चेतना का प्रतिनिधि होने पर ही इस गौरव का अधिकारी होता है। शेक्सपियर, रवीन्द्रनाथ या भारतेन्दु व्यक्ति न होकर संस्था थे युग निर्माता थे, जिनके कृतित्व ने अपने-अपने युग की प्रमुख साहित्यिक प्रवृत्तियों को प्रभावित किया था। राष्ट्रीय महत्व की घटना जैसे महायुद्ध, भारतीय स्वतन्त्रता की घोषणा-अथवा किसी व्यापक आन्दोलन या प्रवृत्ति के अनुसार नाम की सार्थकता और भी अधिक स्पष्ट है: भक्ति, पुनर्जागरण अथवा राष्ट्रीय आंदोलन का प्रभाव जितना समाज पर था उतना साहित्य पर भी। और अंत में साहित्यिक प्रवृत्ति के विषय में तो कहना ही क्या ? उनके अनुसार नामकरण की सार्थकता स्वतः सिद्ध है। कहने का अभिप्राय यह है कि साहित्य के इतिहास में नामकरण का मूल आधार है - काल विशेष की साहित्यिक चेतना का प्रतिफलन, जिसका माध्यम सामान्यतः उस युग की सर्वप्रमुख साहित्यिक प्रवृत्ति ही हो सकती है। काल विभाजन एवं नामकरण में एकरूपता अनिवार्य नहीं है। आवश्यकता इस बात की है कि काल-विभाजन विवके सम्मत हो, जो साहित्य की परम्परा को सही रूप में समझने में सहायक हो। साथ ही, नाम भी ऐसा होना चाहिए जो युग की साहित्य चेतना का सही ढ़ग से प्रतिफलन करता हो, यदि साहित्यिक नामकरण से भ्रान्ति उत्पन्न होती हो तो अन्य उचित आधार ग्रहण करने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। इस सम्पूर्ण संक्षिप्त विश्लेषण के आधार पर अध्ययन की सुविधा के लिए निम्नलिखित बिन्दुओं को प्रस्तुत किया जा सकता है -

1. काल-विभाजन साहित्यिक प्रवृत्तियों और रीति-आदर्शों की समानता के आधार पर होना चाहिए।

2. युगों का नामकरण यथासंभव मूल साहित्य चेतना को अधार मानकर साहित्यिक प्रवृत्ति के अनुसार करना चाहिए किन्तु जहॉ ऐसा नहीं हो सकता वहाँ राष्ट्रीय-सांस्कृतिक प्रवृत्ति

को आधार बनाया जा सकता है या फिर कभी-कभी विकल्प न होने पर निर्विशेष कालवाचक नाम को भी स्वीकार किया जा सकता है। नामकरण में एकरूपता काम्य है, किन्तु उसे सायास सिद्ध करने के लिए भ्रांतिपूर्ण नामकरण उचित नहीं है।

3. युगों का सीमांकन मूल प्रवृत्तियों के आरम्भ और अवसान के अनुसार होना चाहिए जहाँ साहित्य के मूल स्वर अथवा उसकी मूल चेतना में परिवर्तन लक्षित हो और नए स्वर एवं चेतना का उदय हो, वहॉ युग की पूर्व-सीमा और जहॉ वह समाप्त होने लगे, वहॉ उत्तर सीमा माननी चाहिए।

अभ्यास प्रश्न -

(क) सही विकल्प चुनिए -

1. चैतन्य युग का संबंध है -

   (क) बंगाल से (ख) महाराष्ट्र से (ग) कश्मीर से (घ) इनमें से किसी से नहीं

2. किसी व्यापक आंदोलन पर आधारित साहित्यिक युग है -

   (क) शुक्लोत्तर युग (ख) चारण युग (ग) भक्ति युग (घ) तीनों सही है।

(ख) सही अथवा गलत निशान लगाएं -

1. 'छायावाद' साहित्यिक प्रवृति के आधार पर किया गया नामकरण है।

2. हिंदी साहित्य का प्रथम युग आदिकाल नाम से जाना जाता है।

(ग) लघु उत्तरीय प्रश्न

1. हिंदी साहित्येतिहास लेखन की दो प्रमुख समस्याओं पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

3.4 हिंदी साहित्येतिहास: नामकरण की समस्या

आचार्य शुक्ल ने हिंदी-साहित्य के इतिहास को चार कालों में विभाजित किया।

1. वीरगाथा काल
2. भक्ति काल
3. रीतिकाल

4. आधुनिक काल

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने ''जार्ज ग्रियर्सन और मिश्रबंधुओं से कुछ संकेत अवश्य ग्रहण किए हैं, परन्तु काल विभाजन और नामकरण की अन्तिम तर्क पुष्ट व्याख्या उनकी अपनी है। इनमें से भक्तिकाल और आधुनिक काल को तो यथावत् स्वीकार कर लिया गया है, परन्तु वीरगाथाकाल और रीतिकाल के विषय में विवाद रहा है। 'वीरगाथा-काल' नाम के विरूद्ध अनेक आपत्तियॉं की गई हैं जिनमें प्रमुख यह है कि जिन वीरगाथाओं के आधार पर शुक्ल जी ने यह नामकरण किया है, उनमें से कुछ अप्राप्य है और कुछ परवर्ती काल की रचनाएं हैं। इनके अतिरिक्त जो साहित्य इस कलावधि में लिखा गया है उसमें सामन्तीय और धार्मिक तत्वों का प्राधान्य होने पर भी कथ्य और माध्यम के रूपों की ऐसी विविधता और अव्यवस्था है कि किसी एक प्रवृत्ति के आधार पर उसका सही नामकरण नहीं किया जा सकता। ऐसी स्थिति में आदिकाल-जैसा निर्विशेष नाम, जो भाषा और साहित्य की आरम्भिक अवस्था मात्र का द्योतक करता है, विद्वानों को अधिक मान्य है - और मैं समझता हूँ कि इसका कोई विकल्प नहीं है। 'रीतिकाल' के विषय में मतभेद की परिधि सीमित है। वहॉं विवाद का विषय इतना ही है कि उस युग के साहित्य में रीति-तत्व प्रमुख है या श्रंगार-तत्व प्राचुर्य दोनों का ही है, पर इन दोनों में भी अधिक महत्व किसका है ?हमारा विचार है कि जिस युग में रीति-तत्व का समावेश श्रंगार में ही नहीं, भक्तिकाव्य और वीर-काव्य में भी हो गया था - अथवा यह कहें कि जीवन का स्वरूप ही बहुत-कुछ रीतिबद्ध हो गया था- उसका नाम 'रीतिकाल' ही अधिक समीचीन है। इसके विकल्प 'श्रंगारकाल' में अतिव्याप्ति है, क्योंकि श्रृंगार का प्राधान्य तो प्रायः सभी युगों में रहा है: वह काव्य का एक प्रकार से सार्वभौम तत्व है, अतः उसके आधार पर नामकरण अधिक संगत नहीं होगा। इस युग का श्रृगांर रीतिबद्ध था, अतः रीति ही यहॉं प्रमुख है।

आधुनिक काल को शुक्ल जी ने तीन चरणों में विभाजित किया है और उन्हें प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय उत्थान कहा है। प्रथम और द्वितीय उत्थान के विषय में उन्होंने यह संकेत भी कर दिया है कि इन्हें क्रमशः 'भारतेन्द्र-काल' और 'द्विवेदी काल' भी कहा जाता है। तीसरे उत्थान को कदाचित उसके प्रवाहमय रूप के कारण, उन्होंने कोई नाम नहीं दिया। पहला काल खण्ड जीवन और साहित्य में पुनर्जागरण का युग था, जब अतीत की गौरव-भावना के परिप्रेक्ष्य में नवजागरण की चेतना विकसित हो रही थी अतः इसे 'पुनर्जागरण-काल' नाम दिया जा सकता है और चूंकि भारतेन्दु के व्यक्तित्व और कृत्तिव में, जिन्होंने अपने जीवन-काल में इस युग का नेतृत्व किया और जिनका प्रभाव मरणोपरांत भी बना रहा, यह चेतना सम्यक प्रतिफलित हो रही थी, इसलिए इसका नामकरण उनके नाम पर करने पर भी कोई आपत्ति नहीं हो सकती। प्रायः इसी पद्धति और युक्ति से द्वितीय उत्थान का नामकरण भी किया जा सकता है: उसे हम औचित्यपूर्वक 'जागरण-सुधार काल या विकल्पतः 'द्विवेदीयुग' कह सकते हैं। तीसरे चरण की सर्वप्रथम साहित्य प्रवृत्ति है - छायावाद, अतः उसका उचित नाम छायावाद-काल ही हो सकता है। उसका परवर्ती काल हमारे अत्यन्त निकट है और उसकी मूल चेतना इतनी जल्दी-जल्दी बदल रही है कि किसी एक स्थिर आधार को लेकर

उसका नामकरण नहीं किया जा सकता। आरम्भ में प्रगतिवाद का दौर था जो कुछ ही वर्षों में समाप्त हो गया। इसके कुछ बाद प्रयोगवाद का आविर्भाव हुआ जो थोड़े समय तक इसके समानान्तर चलकर 1953 के आसपास नवलेखन में परिणत हो गया।

हिंदी साहित्य का इतिहास नवलेखन के आगे भी अपनी प्रवृत्ति के आधार पर विकसित होता रहा। समसामयिक साहित्य, नई कविता, अकविता, समानांतर कविता एवं कहानी नाम से अनेक आंदोलन निरंतर चलते रहे। समकालीन साहित्य एवं उत्तर आधुनिक साहित्य जैसे नामकरण भी प्रयोग में आते रहे हैं। अध्ययन की सामान्य धारा को ध्यान में रखते हुए डॉ.गणपति चंद्र गुप्त ने हिंदी साहित्य के सम्पूर्ण इतिहासचक्र के निम्नलिखित नामकरण सरणी के रूप में प्रस्तुत किया है।

आदिकाल - सातवीं शती के मध्य से चौदहवीं शती के मध्य तक

भक्तिकाल - चौदहवीं शती के मध्य से सत्रहवीं शती के मध्य तक

रीतिकाल - सत्रहवीं शती के मध्य से उन्नीसवीं शती के मध्य तक।

आधुनिक काल - उन्नीसवीं शती के मध्य से अब तक:

1. पुनर्जागरण काल (भारतेन्दु काल) 1987-1900 ई.
2. जागरण सुधार काल (द्विवेदी काल) 1900-1918 ई.
3. छायावाद काल (1918-1938 ई.)
4. छायावादोत्तर काल

(क) प्रगति-प्रयोग काल 1938-1953 ई.

(ख) नवलेखन-काल 1953 ई. से अब तक

अभ्यास प्रश्न 2 -

(क) सही अथवा गलत लिखिए -

1. हिंदी साहित्य का द्वितीय काल वीरगाथ काल है।
2. हिंदी साहित्य का अद्यतन युग आधुनिक काल हैं।
3. द्विवेदी युग को 'जागरण-सुधार काल' भी कहा जा सकता है।

(ख) सही विकल्प चुनिए -

1. आचार्य शुक्ल से पहले भारतीय हिंदी साहित्येतिहास लेखक हैं -

   (क) ग्रियर्सन (ख) ई. एफ0 के

   (ग) मिश्रबंधु (घ) इनमें से कोई नहीं

2. 17वीं सदी से 19वीं सदी के मध्य तक के काल को कहते हैं -

   (क) रीतिकाल (ख) मध्यकाल

   (ग) आधुनिक काल (घ) इनमें से कोई नहीं

3. लघु उत्तरीय प्रश्न -

(क) हिंदी साहित्येतिहास में नामकरण की समस्या पर एक सार गर्भित टिप्पणी लिखिए।

(ख) हिंदी साहित्य का क्रमबद्ध नामकरण एवं काल विभाग प्रस्तुत कीजिए।

3.4.1 नामकरण की समस्या: आदिकाल

14वीं शताब्दी तक के अपभ्रंश साहित्य तथा अपभ्रंश प्रभावित कुछेक हिंदी रचनाओं की चर्चा हिंदी साहित्येतिहासिक की पूर्वपीठिका के रूप में होनी चाहिए ताकि हिंदी साहित्य के उद्भव तथा उसकी काव्य-परंपराओं पर ऐतिहासिक दृष्टि से विचार संभव हो सके, किन्तु इस काल को हिंदी साहित्येतिहासिक के एक स्वतंत्र युग के रूप में मान्यता देना तर्क संगत दिखाई नहीं देता। हिंदी साहित्य के इतिहास ग्रंथों में जिस युग को हिंदी साहित्य का आदिकाल अथवा वीरगाथाकाल अथवा चारणकाल माना गया है, वह वस्तुतः अपभ्रंश भाषा के इतिहास का युग है। जनभाषा हिंदी (संस्कृतनिष्ठ हिंदी की बोलियां) में साहित्य लेखन के छिटपुट प्रयत्न अवश्य होने लगे थे। डा. शिवकुमार ने सुझाव दिया है - यह युग हिंदी साहित्य के इतिहास की पूर्वपीठिका है न कि अपने आप में हिंदी साहित्य का एक दीर्घ युग। इसलिए इसको किसी नाम से संबंधित करने का प्रश्न ही पैदा नहीं होता। यदि फिर भी कुछ विद्वान इन चार शताब्दियों के साहित्य को हिंदी का साहित्य मानने चाहें तो भी उन्हें इसे पुरानी हिंदी का साहित्य मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। उस दृष्टि से भी उस काल का विवेचन पुरानी हिंदी का साहित्य नामक शीर्षक के अन्तर्गत हिंदी साहित्य के इतिहास की भूमिका के रूप में ही होना चाहिए। इसके बावजूद इतिहासकारों ने हिंदी साहित्येतिहास के इस प्राथमिक उत्थान को आदिकाल कहना पसंद किया है।

हिंदी साहित्य के प्रथम युग, जिसे हम आदिकाल वीरगाथाकाल आदि नामें से जानते है - का नामकरण एक विवादपूर्ण प्रश्न रहा है। सदैव ही साहित्येतिहासकार एवं अन्य विद्वान इस जटिल विवादपूर्ण प्रश्न अन्य विद्वान इस जटिल विवादपूर्ण प्रश्न को हल करते रहे हैं।

''भाषा के विद्वानों तथा इतिहासकारों ने जितना इस समस्या पर विचार किया है, उतना ही उलझाव पैदा किया है। कुछ विद्वानों ने अपभ्रंश साहित्य को पुरानी हिंदी का साहित्य मानकर साहित्येतिहास के प्रथम युग का आरम्भ सातवीं अथवा आठवीं शताब्दी से मान लिया है। दूसरे वर्ग के विद्वान 1000 ई. के लगभग इस युग का आरम्भ मानने के पक्ष में हैं। तीसरा वर्ग उन विद्वानों का है जो खड़ी बोली को ही हिंदी के नाम से अभिहित करना चाहते हैं, और ब्रजभाषा आदि के साहित्य को हिंदी साहित्येतिहास में स्थान देने के औचित्य की कटु आलोचना करते हैं। शिवदान सिंह चौहान ने विस्तार से इस समस्या पर विचार करते हुए सिद्ध करना चाहा कि हिंदी (सांस्कृतिनिष्ठ खड़ी बोली) साहित्य का इतिहास भारतेन्दु हरिशचंद्र के पहले मौलिक प्रहसन वैदिकी हिंसा न भवति से आरम्भ होता है। वे लिखते हैं इस दृष्टि से देखे तो समूचे हिंदी (खड़ी बोली) साहित्य का इतिहास अभी तक एक शताब्दी भी पार नहीं कर पाया।

इस प्रकार हिंदी के स्वरूप विस्तार का प्रश्न काफी टेढ़ा हो गया है। डा. नगेन्द्र ने ब्रज, अवधी, आदि भाषाओं को हिंदी, साहित्येतिहास के व्यापक रूप में प्रयुक्त किया है। उनके विचारानुसार हिंदी के विद्वान और अन्य भाषाविद प्रारम्भ से ही यह स्वीकार करते हुए आए हैं कि भारतवर्ष के जितने भू-भाग में वर्तमान हिंदी या खड़ी बोली हिंदी सामाजिक व्यवहार अर्थात् पत्राचार, शिक्षा-दीक्षा, सार्वजनिक आयोजन विचार-विनिमय तथा साहित्यिक अभिव्यक्ति आदि माध्यम भाषाहै, वह सब का सब हिंदी प्रदेश है और उसके अन्तर्गत बोली जाने वाली सभी भाषाएं हिंदी की उपभाषाएं है।

हिंदी साहित्य के विभिन्न इतिहास-ग्रंथों में इस साहित्यिक परम्परा के प्राथमिक युग के नामकरण के बारे में कई मत प्रचलित हैं। सबसे अधिक विवाद आदिकाल के नामकरण के बारे में हैं। विभिन्न इतिहासकारों द्वारा प्रस्तावित नामकरण इस प्रकार है -

1.	आचार्य रामचंद्र शुक्ल	-	वीरगाथाकाल
2.	डॉ. रामकुमार वर्मा	-	चारणकाल
3.	महावीर प्रसाद द्विवेदी	-	बीजवपनकाल
4.	राहुल सांकृत्यायान	-	सिद्ध सामंतकाल
5.	डॉ. रामखेलावन पाण्डेय	-	संक्रमणकाल
6.	मोहन अवस्थी	-	आधार काल

7. डॉ. पृथ्वीनाथ कमल कुलश्रेष्ठ - अंधकार काल
8. डॉ. गणपति चंद्र गुप्त - प्रारंभिक काल
9. डा. रामशंकर शुक्ल 'रसाल' - बाल्यकाल
10. डा. शंभुनाथ सिंह - प्राचीनकाल
11. डा. वासुदेव सिंह - उद्भव काल
12. डा. हजारीप्रसाद द्विवेदी - आदिकाल
13. डा. रामप्रसाद मिश्र - संक्रांति काल
14. डा. शैलेश जैदी - आविर्भावकाल

इस सब व्यवस्थित नामावली के अतिरिक्त अन्य विद्वानों ने भी हिंदी साहित्य के प्रथम युग के नामकरण की समस्या को हल करने का प्रयत्न किया है किन्तु सभी विश्लेषकों के प्रस्तावित नामों में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी द्वारा विश्लेषित नाम 'आदिकाल' सर्वमान्य है।

3.4.2 नामकरण की समस्या: भक्तिकाल

हिंदी साहित्येतिहास में 14वीं शताब्दी के जिस कालखण्ड को पूर्व मध्यकाल या भक्तिकाल कहा गया है, उसकी सम्पूर्ण दार्शनिक, रचनात्मक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, मध्यकालीन भक्ति आंदोलन में विद्यमान है। भक्तिकाल में पृष्ठभूमि के रूप में भक्ति आंदोलन के प्रादुर्भाव का मूलभूत कारण न तो हिन्दू जनता की पराजित मनोवृत्ति में विद्यमान है और न इस्लाम के प्रभाव के कारण ही भक्ति का ऐसा विस्तार साकार हुआ। यह ऐ ऐसा आंदोलन था, जिसने सम्पूर्ण भारत को प्रभावित किया और वह अधिकांशतः भारतीय धार्मिक और आध्यात्मिक परम्परा में ही विकसित हुआ।

''भारतीय इतिहास के जिस कालखण्ड में भक्ति आन्दोलन के परिणाम स्वरूप निर्गुण और सगुण भक्ति का समानान्तर प्रवाह हिंदी साहित्य की उपलब्धियों का साक्षी बना, उसे हिंदी साहित्य का स्वर्णयुग भी कहा जाता है। डा. श्यामसुंदर दास के अनुसार - जिस युग में कबीर, जायसी, मीरा, तुलसी, सूर जैसे रससिद्ध कवियों और महात्माओं की दिव्य धाती उनके अन्तःकरण से निकलकर देश के कोने-कोने में फैली थी, उसे साहित्येतिहास में सामान्यतः भक्ति युग कहते हैं। ''इस कालखण्ड में भक्ति के अतिरिक्त अन्य विषयों और रसों की रचनाएं भी स्फुट तौर पर मिलती हैं, लेकिन निर्विवाद तौर पर भक्त्यात्मकता ही इस कालखण्ड की अन्यतम उपलब्धि है। इतिहासकारों ने पूरी सावधानी के साथ अपने इतिहास ग्रंथों में भक्ति-भावना से आपूरित इस कालखण्ड को भक्तिकाल की संज्ञा दी है और अधिकांशतः यही संज्ञा स्वीकारी गई।

''हिंदी साहित्येतिहास लेखन में भक्तिकाल संबंधी शुक्ल जी के काल निर्धारण को विशेष स्वीकृति मिली है तथा उनके द्वारा किया गया अन्तर्विभाजन प्रायः सभी इतिहासकारों द्वारा अपना लिया गया है। उन्होंने ही सर्वप्रथम हिंदी साहित्येतिहास के पूर्वमध्यकाल को भक्तिकाल का नाम दिया तथा इसकी कालावधि संवत 1375 से सं. 1700 तक मानी है। इसके अन्तर्गत उन्होंने चार भक्ति काव्याधाराओं की स्थिति मानी है। वे हैं -

1.	निर्गुणधारा	:	ज्ञानाश्रयी शाखा
2.	निर्गुणधारा	:	प्रेमाश्रयी शाखा (सूफी शाखा)
3.	सगुणधारा	:	रामभक्ति शाखा
4.	सगुणधारा	:	कृष्णभक्ति शाखा।

''हमारे देश में इस युग के नवजागरण की प्रकृति धार्मिक है तथा तत्कालीन हिंदी साहित्य भक्त कवियों की देन है। वे पहले भक्त थे और बाद में कवि। इसलिए इस युग के काव्य में भक्ति का स्वर प्रधान रहा है। युग के अन्तर्विभाजन की दृष्टि से भी इस युग को भक्तिकाल कहना अधिक उचित है। भक्तिकाल के नामकरण और उसकी काल सीमा के बारे में विवाद बहुत कम है। डा. ग्रियर्सन ने 15वीं शताब्दी को धार्मिक पुनर्जागरण का काल घोषित कर जो स्थापना दी थी, उसी जमीन पर आचार्य शुक्ल ने भक्तिकाल नाम की प्रस्तावना की। अपने इतिहास में उन्होंने संवत् 1375 से सं. 1900 तक के काल को मध्यकाल कहा हैं

''शुक्ल जी के इस विभाजन से मतभेद बहुत कम प्रकट किया गया है।

''यह स्वीकार लेने में किसी भी इतिहासकार को कोई आपत्ति नहीं हुई है कि भक्ति इस युग की प्रमुख प्रवृत्ति थी और इसके आधार पर 15वीं शताब्दी के अंतिम भाग से लेकर 17वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक रची गई काव्य-परम्परा के समूचे कालखण्ड को भक्तिकाल से बेहतर संज्ञा नहीं दी जा सकती।

3.4.3 नामकरण : रीतिकाल

''हिंदी साहित्येतिहासकारों ने जिस उत्तर मध्यकाल को रीतिकाल की संज्ञा दी है, उसके नामकरण के बारे में इतिहासकारों के बीच पर्याप्त मतवैमिन्य रहा हैं आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने रीतिकाल नामकरण की प्रासंगिकता सिद्ध करते हुए रीति शब्द की विस्तृत व्याख्या की है। उन्होंने यह स्पष्ट किया है कि रीति शब्द अपनी बहुआयामी गरिमा के कारण पर्याप्त व्यंजक तथा अर्थपूर्ण है. डा. शिवमूर्ति शर्मा के अनुसार हिंदी साहित्य के उत्तर मध्यकाल में रीति संबंधी ग्रंथों की प्रमुखता को देखते हुए शुक्ल जी ने इसका नामकरण रीतिकाल किया था।

''उत्तर मध्यकाल के जिस कालखण्ड को रीतिकाल कहा जा रहा है, उसे उपलब्ध सामग्री और संदर्भों के आधार पर रीतिकाल कहने में इधर के इतिहासकारों ने संकोच का अनुभव किया है सच तो यह है कि रीतिकाल के कई नामकरणों और सीमाओं का उल्लेख इतिहासकार करते आए है। जैसे -

1.	मिश्रबंधु	-	अलंकृतकाल
2.	एफ.ई. के	-	चारणीकाल
3.	जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन	-	रीतिकाल
4.	रामचंद्र शुक्ल	-	रीतिकाल
5.	श्यामसुंदर दास	-	रीतिग्रंथ काल
6.	सूर्यकांत शास्त्री	-	लालित्य युग
7.	रमाशंकर शुक्ल 'रसाल'	-	कलाकाल
8.	डा. रामकुमार वर्मा	-	रीतिकाल
9.	डा. हजारीप्रसाद द्विवेदी	-	रीतिकाल
10.	चतुरसेन शास्त्री	-	अलंकृतकाल
11.	डा. रामअवध द्विवेदी	-	रीतिशाखाकाल
12.	डा. शम्भुनाथ सिंह	-	ह्रासकाल
13.	डा. रामखेलावन पाण्डेय	-	संवर्धनकाल
14.	डा. नगेन्द्र	-	रीतिकाल
15.	डा. गणपतिचंद्र गुप्त	-	अपकर्षकाल
16.	सत्यकाम वर्मा	-	काव्य विलास युग

रीतिकाल के इन विभिन्न नामों को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उत्तरमध्यकाल के इस काल-खण्ड के नाम 'रीतिकाल' पर विद्वान एकमत नहीं है परन्तु फिर भी आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा प्रस्तावित नाम रीतिकाल अब भी सर्वाधिक प्रचलित एवं मान्य रद्य है।

3.4.4 नामकरण की समस्या: आधुनिक काल

''हिंदी साहित्य के आधुनिक युग का प्रथम चरण पुनर्जागरणकाल या हरिश्चन्द्रकाल है। पुनर्जागणकाल नव सर्जना की स्फूर्ति का युग था। ब्रिटिश शासन के साथ पश्चिम के ज्ञान विज्ञान तथा संस्कृति-साहित्य का भी आयात इस देश की भूमि पर हो रहा था, जिसके संघात से एक नवीन चेतना का जन्म हुआ और भारत के प्रबुद्ध मनीषी नए दृष्टिकोण से अपने सांस्कृतिक रिक्थ का पुनर्विचार करने लगे। अतीत के प्रति नया आकर्षण और उसके द्वारा वर्तमान को समृद्ध करने की एक नवीन स्पृहा उनके चित्त में उत्पन्न हो गई हिंदी साहित्य के क्षेत्र में इस चेतना का प्रतिनिधित्व भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने किया और उनके नेतृत्व में हिंदी के कविलेखक बड़े उत्साह से अतीत के परिपार्श्व में वर्तमान युग के भाव-बोध की अभिव्यक्ति देने का प्रयास कर रहे थे।

''हिंदी साहित्य का आधुनिककाल अन्य साहित्यिक युगों में कालावधि की दृष्टि से जितना सीमित है, उतना ही साहित्यिक विविधता तथा विस्तार के कारण अत्यन्त जटिल है। अतः आधुनिक साहित्य को जो अपेक्षाकृत जटिल, दुर्बोध, संशयग्रस्त, समाधानहीन जीवन को अंकित करता है, इतिहास की सीमाओं में बॉध पाना एक कठिन कर्म है। फिर भी हिंदी साहित्य के इतिहासकारों ने इस युग के अनेक रूप साहित्य का व्यवस्थित रूप से वर्गीकण रकने का प्रयत्न किया हैं तेजी से बदलते हुए दस काल के साहित्य को भिन्न-भिन्न युगों में विभाजित करके उन युगों का नामकरण किया है।

''समसामयिक युग में कहा जा सकता है कि रामचंद्र शुक्ल द्वारा रचित 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में आधुनिककाल आश्चर्यजनक रूप से कमजोर और तारतम्यहीन है, किन्तु इसमें कोई संदेह नहीं कि सर्वप्रथम उन्होंने ही आधुनिक-काल के इतिहास का सुविख्यात वर्गीकरण और उपविभाजन करने का प्रशंसनीय कार्य किया है। उन्होंने आधुनिक-काल को दो खण्डों में विभाजित करके गद्य और पद्य के विकास का निम्नलिखित रूप में उपविभाजन किया है।

क आधुनिक काल: गद्य खण्ड (सं. 1900 से 1980)

1. प्रकरण 1 - गद्य का विकास
2. प्रकरण 2 - गद्य साहित्य का अविर्भाव
3. आधुनिक गद्य साहित्य: परम्परा का प्रवर्तन प्रथम उत्थान (सं. 1925 से 1950)
4. गद्य साहित्य का प्रसार: द्वितीय उत्थान (सं. 1950 से 1975)
5. गद्य साहित्य की वर्तमान गति: तृतीय उत्थान (सं. 1975 से.....)

ख आधुनिक काल: काव्यखण्ड (सं. 1900 से)

1. पुरानी धारा (1900 से 1925)
2. नई धारा: प्रथम उत्थान (1925 से 1960)
3. नई धारा: द्वितीय उत्थान (1950 से 1975)
4. नई धारा: तृतीय उत्थान (1975 से.....)

इस विवेचन से एक तरफ जहाँ हिंदी साहित्य के सबसे नवीन युग की क्रमशः साहित्य प्रवृत्ति का परिचय मिलता है वही दूसरी तरफ इस कालखण्ड के नामकरण की सार्थकता का भी आभास मिलता है। 'आधुनिक' शब्द न केवल हिंदी साहित्य के चौथे कालखण्ड का द्योतक है अपितु वह (आधुनिक) साहित्य की आंतरिक प्रवृत्ति मौलिकता एवं विशेषता को भी इंगित करता है। हालाकि अनेक इतिहासकारों ने इस चौथे कालखण्ड के लिए अन्यान्य नामों को प्रस्तावित किया है परन्तु आचार्य शुक्ल द्वारा प्रदत्त 'आदिकाल नाम' समीचीन हैं

बोध प्रश्न

(ग) अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. हिंदी साहित्य के प्रथम युग को किन दो प्रमुख नामों से जाना जाता है।
2. पूर्व मध्यकाल का दूसरा नाम क्या है।
3. सगुण भक्तिधारा की दोनों शाखाओं के नाम लिखिए।
4. हिंदी साहित्य के रीतिकाल को डा. नगेन्द्र किस नाम से द्योतित करते है।

(घ) लघु उत्तरी प्रश्न - (शब्द सीमा 150 शब्द)

1. नामकरण की समस्या के परिप्रेक्ष्य में हिंदी साहित्य के 'आधुनिक काल' नाम का विवेचन कीजिए।

3.5 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप -

- ❖ आप हिंदी साहित्य के चारों कालखण्डों से परिचित हो चुके होंगे।
- ❖ आप विवेचित चारों युगों की प्रवृत्तिगत साहित्य धारा एवं उनके नामों की सार्थकता को जान चुके होंगे।

- ❖ आप हिंदी साहित्येतिहासकारों के पारस्परिक विवेचन, उनकी सीमाओं और हिंदी साहित्य के क्रमबद्ध विकास का ज्ञान प्राप्त कर चुके होंगे।
- ❖ आप विभिन्न इतिहासकारों द्वारा हिंदी साहित्य के विभिन्न कालों के लिए प्रस्तावित नामों एवं उनके महत्व को जान चुके होंगे।

3.6 शब्दावली

1.	स्वातन्त्रयोत्तर	-	स्वतन्त्रता के पश्चात्
2.	पर्यवेक्षण	-	जांच -परख
3.	प्रवृत्ति	-	आदत
4.	साम्य	-	बराबर, समान
5.	वैषम्य	-	विपरीत, अलग
6.	प्रतिफल	-	परिणाम
7.	काम्य	-	जिसकी कामना की जाए
8	अतिव्याप्ति	-	बहुत अधिक सीमा
9.	समसामयिक	-	वर्तमान काल से संबंधित

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.3 के अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(क) सही विकल्प चुनिए -

1. बंगाल से
2. भक्ति युग

(ख) सही अथवा गलत निशान लगाए -

1. सही
2. सही

3.4 के अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(क) सही अथवा गलत लिखिए

1. गलत
2. सही
3. सही

(ख) सही विकल्प चुनिए

1. मिश्रबंधु
2. रीतिकाल

(ग) अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

1. वीरगाथा काल, आदिकाल
2. भक्तिकाल
3. (क) रामभक्ति शाखा (ख) कृष्ण भक्ति शाखा
4. रीतिकाल

3.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डा.नगेन्द्र ,हिंदी साहित्य का इतिहास 2004 मयूर पेपर बैक्स नोएडा पृष्ठ 38-40
2. उपरोक्त , पृष्ठ 41
3. उपरोक्त पृष्ठप 44
4. उपरोर्क्त पृष्ठा 44.45
5. अग्रवाल,सुधा,हिंदी साहित्येतिहास में युग निर्धारण,1989, साहित्य प्रकाशन दिल्ली पृष्ठ-139
6. उपरोक्त,पृष्ठ,129-130
7. उपरोक्त,पृष्ठ ,140

8 उपरोक्त, पृष्ठ, 151

9 उपरोक्त, पृष्ठ,165-166

10 उपरोक्त पृष्ठ 167-169

11 उपरोक्त, पृष्ठ,184

12 उपरोक्त,पृष्ठ ,199-200

3.9 सहायक पाठ्य सामग्री

1 रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास काशी नागरी प्रचारिणी सभा,वाराणसी

2 हजरी प्रसाद द्विवेदी,हिंदी साहित्य की भूमिका राजकमल प्रकाशन,नई दिल्ली

3 डा. नगेन्द्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपर बैक्स, नोएडा

4 सुधा अग्रवाल, हिंदी साहित्य में युग निर्धारण, साहित्य प्रकाशन दिल्ली

5 शिवकुमार हिंदी साहित्य का इतिहास,दर्शन मैकमिलन कम्पनी ऑफ इंडिया दिल्ली

3.10 निबंधात्मक प्रश्न

क. हिंदी साहित्येतिहास लेखन की प्रमुख दो समस्याएं कौन सी हैं ? किसी एक का विवेचन कीजिए।

ख. हिंदी साहित्येतिहास के संबंध में नामकरण की समस्या से आप क्या समझते है ? विस्तृत विवेचन कीजिए।

इकाई 4 हिंदी साहित्येतिहास लेखन : काल – विभाजन की समस्या

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 साहित्येतिहास एवं काल-विभाजन
4.4 हिंदी साहित्येतिहास एवं काल – विभाजन
4.4.1 ग्रियर्सन द्वारा प्रतिपादित काल – विभाजन
4.4.2 मिश्रबंधुओं द्वारा प्रस्तावित काल – विभाजन
4.4.3 आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा प्रस्तावित काल – विभाजन
4.4.4 डॉ. रामकुमार वर्मा द्वारा प्रस्तावित काल –विभाजन
4.4.5 डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त द्वारा प्रस्तावित काल – विभाजन
4.4.6 अन्य विद्वानों द्वारा प्रस्तावित काल – विभाजन
4.5 सुविधाजनक और उपयोगी काल-विभाजन
4.6 सारांश
4.7 शब्दावली
4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
4.10 सहायक पाठ्यसामग्री
4.11 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

यह स्नातकोत्तर स्तर, प्रथम प्रश्न पत्र की चौथी इकाई है। इसके पूर्व के अध्ययन में आपने इतिहास एवं साहित्येतिहास की प्रक्रिया एवं स्वरूप के साथ-साथ हिंदी साहित्येतिहास लेखन की संपूर्ण परम्परा एवं हिंदी साहित्येतिहास की समस्याओं के बारे में विस्तार से ज्ञान प्राप्त किया। इससे पूर्व की इकाई में आपने हिंदी साहित्येतिहास के परिप्रेक्ष्य में नामकरण की समस्या का अध्ययन किया।

प्रस्तुत इकाई में आप हिंदी साहित्येतिहास के परिप्रेक्ष्य में काल-विभाजन की समस्या एवं उसके विभिन्न रूपों तथा समय-समय पर हिन्दी साहित्येतिहासकारों द्वारा इस समस्या पर दिए गए निष्कर्षों का अध्ययन करेंगे।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप हिंदी साहित्य के काल-विभाजन की प्रकृति, प्रक्रिया एवं वर्गीकरण के परिप्रेक्ष्य में संपूर्ण हिंदी साहित्य का अध्ययन कर सकेंगे।

4.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- साहित्यितिहास तथा काल-विभाजन के अन्तर्सबंधों को समझ सकेंगे।
- Γ काल-विभाजन की प्रक्रिया तथा स्वरूप को जान सकेंगे।
- हिंदी साहित्येतिहास के विभिन्न इतिहासकारों द्वारा प्रदत्त काल-विभाजन को जान सकेंगे।
- हिंदी साहित्येतिहास के क्रमिक विकास का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- साहित्येतिहास के अंतर्गत काल-विभाजन के आधार एवं महत्व को समझ सकेंगे।

4.3 साहित्येतिहास एवं काल–विभाजन

''इतिहास एक व्यक्ति की नहीं, मानव के समग्र जीवन की खोज है। इसलिए मानव-जीवन के निरंतर प्रवाह में काल विभाजन कोई अर्थ नहीं रखता। उसका यह प्रवाह पूर्णत: बदल जाता हो, ऐसा नहीं है। किन्तु इतिहास के अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से यादृच्छिक रूप में उसे विभिन्न कालों में विभाजित कर लिया जाता है ताकि एक काल विशेष में उसके जीवन में आरोह-अवरोह का और उसके कारणों का पता लगाया जा सके। समान साहित्यिक आदर्शों, मानकों, रूढ़ियों के उद्भव, विकास और लोप के कारणों का, पता लगाने की चेष्टा करते हैं। 'काल' एक निरंतर प्रवहमान

ऐतिहासिक प्रक्रिया में निहित आदर्शों का पता लगाता है। कृतियों का अध्ययन उस काल की अवधारणा निश्चित करने के लिए किया जाता है न कि टाइप या वर्ग के रूप में। काल-विशेष आदर्शों की एक व्यवस्था से अनुप्राणित रहता है और कोई एक कला-कृति उसे उभारने में असमर्थ रहती है। इसलिए साहित्येतिहास का प्रणयन करते समय काल-विभाजन भी एक महत्वपूर्ण समस्या है और इस संबंध में हिंदी साहित्य के विद्वानों की उपलब्धियॉ सर्वविदित हैं। हिंदी साहित्य के प्रमुख कालों को लेकर ऐसा विवाद चलता रहा है जो संभवत: कभी समाप्त ही न हो। 'आदिकाल', 'मध्यकाल' (भक्ति और रीतिकाल, आधुनिक काल या ब्रिटिश काल, पूर्व-प्रसाद काल, प्रगतिवादी काल, प्रयोगवादी काल, स्वतंत्रता काल) आदि नामों को लेकर विवाद चलता रहता है और इन शब्दों की व्याख्याएं और पुनर्व्याख्याएं होती रहती हैं। हिंदी में इतिहास, प्रसिद्ध साहित्यकारों विधाओं, प्रवृत्तियों, राष्ट्रीय गतिविधियों, साहित्यिक आंदोलनों आदि के आधार पर विभिन्न कालों का नामकरण किया गया है जो सर्वमान्य नहीं है। वास्तव में काल-विभाजन का कोई आधार होना चाहिए। ''काल-विभाजन को आत्मपरक दृष्टि से देखना उचित नहीं और विभिन्न कालों के बीच विभाजन-रेखा खींचना उसी प्रकार दुस्तर कार्य है जिस प्रकार जल प्रवाह जल प्रवाह के बीच खींचना। तब भी अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से अथवा किसी योजना के अनुसार हम काल विभाजन करते ही हैं और शताब्दियों, दशकों या वर्षों के हिसाब से विश्लेषणात्मक इतिहास लिखे जाते रहे हैं और लिखे जाते रहेंगे।''

अभ्यास प्रश्न –

(क) सही अथवा गलत लिखिए –

क . इतिहास व्यक्ति जीवन की खोज है –

ख . साहित्येतिहास के अन्तर्गत काल विभाजन एक महत्वपूर्ण समस्या है –

ग . हिंदी साहित्य में मध्यकाल का अर्थ 'भक्ति तथा रीतकाल' होता है -

घ . काल-विभाजन आत्मपरक होता है –

4.4 हिंदी साहित्येतिहास एवं काल – विभाजन

हिंदी साहित्य के इतिहास की एक लंबी परंपरा देखने को मिलती है। इस लंबी परम्परा का एक साथ अध्ययन न केवल असुविधाजनक है, अपितु असंभव-सा भी लगता है। यही कारण है कि साहित्य के विकास में समय-समय पर जो परिवर्तन हुए और उन परिवर्तनों हुए और इन परिवर्तनों के समानान्तर जो जो धाराएं विकसित हुई, उनका विभाजन अध्ययन को सुगम बना देता है। काल-विभाजन की आवश्यकता इसलिए भी है कि ऐसा करके हिंदी साहित्य के विकास की परंपरा को

भली-भांति समझा जा सकता है और यह भी जाना जा सकता है कि कब कौन सी धारा किन कारणों से विकसित हुई और उसकी परिणति किस रूप में हुई यह तथ्य है कि कोई भी काव्यधारा एकदम समाप्त नहीं होती, उसके थोड़े बहुत चिन्ह बराबर दिखते रहते हैं, किंतु प्रमुख प्रवृत्तियों में परिवर्तन आ जाता है। हिंदी साहित्य के प्रारम्भिक इतिहास लेखकों में गार्सां द तासी, शिवसिंह सेंगर, आदि के नाम लिये जाते हैं, किन्तु इन्होंने काल-विभाजन की ओर ध्यान नहीं दिया। सर्वप्रथम इस ओर ध्यान देने वाले विद्वानों में डॉ.ग्रियर्सन का नाम आता है। उन्होंने अपने ग्रंथ 'द मॉडर्न वर्नाक्यूलर ऑफ हिन्दुस्तान' में काल-विभाजन का एक प्रयास किया है। उनके ग्रंथ में दिए गए अध्याय काल विशेष के सूचक हैं, किन्तु विडम्बना यह रहीं कि उनके बाद के इतिहास लेखकों पश्चात् मिश्र बन्धुओं ने 'मिश्रबंधु विनोद' में हिंदी साहित्य की लंबी परंपरा को पहले पाँच भागों में विभाजित किया और बाद में उन्हें नौ कालखण्डों में विभक्त कर दिया। मिश्रबंधुओं का यह प्रयास बाद के लेखकों को स्वीकार नहीं हुआ, क्योंकि यह अव्यवस्थित, अप्रामाणिक और आवश्यकता से अधिक लंबा माना गया। ऐसी स्थिति में आचार्य शुक्ल सामने आए और उन्होंने पहली बार एक व्यवस्थित काल-विभाजन प्रस्तुत करने का प्रयास किया। यद्यपि उनके काल-विभाजन में कतिपय त्रुटियाँ प्राप्त किए हुए है। काल-विभाजन की आवश्यकता और महत्ता इस दृष्टि से भी है कि ऐसा करके ही हम हिंदी साहित्य की लंबी परंपरा का सम्यक् तथा तटस्थ मूल्यांकन करने की ओर प्रवृत्त हो सकते हैं। काल-विभाजन कोई भी हो, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि किसी भी प्रामाणिक कहे जाने वाले काल-विभाजन में कोई त्रुटि नहीं होगी। अध्येता के सामने अध्ययन की समस्या होती है। वह विकास की लंबी परंपरा को स्पष्ट रूप से जानना और समझना चाहता है। उसकी यह इच्छा तभी पूर्ण हो सकती है जबकि एक सुविधाजनक, सरल प्रमुख बिन्दुओं को उभारने वाला काल विभाजन सामने हो। यह तो नहीं कहा जा सकता कि कोई भी काल-विभाजन अपने आप में पूर्ण होगा और उसके बाद किसी और काल-विभाजन की आवश्यकता नहीं पड़ेगी, किन्तु यह तो माना ही जा सकता है कि काल-विभाजन ऐसा होना चाहिए जो परिस्थिति, प्रवृत्ति और रचनाकारों की स्थिति को उजागर करता हो। इन्हीं सब कारणों से काल-विभाजन की आवश्यकता और महत्ता है और हमेशा रहेगी।''

काल विभाजन के आधार – काल-विभाजन के अनेक आधार संभव हैं। कर्त्ता के नाम पर, प्रवृत्ति के नाम पर, शासक के नाम पर, साहित्यिकार के प्रभाव के नाम पर और एक जैसी प्रवृत्ति की बहुलता के आधार पर नामकरण और काल-विभाजन किया जा सकता है। उल्लेखनीय तथ्य यह है कि साहित्य की धारा में युगानुरूप प्रवृत्तिगत वैमिन्य भी पाया जाता है। डॉ.हुकुमचन्द राजपाल का कथन है कि विभिन्न प्रवृत्तियों का एक साथ अध्ययन वैज्ञानिक भी बन जाता है। इसलिए साहित्यधारा को विभिन्न कालों में विभाजित करके नामकरण करने की आवश्यकता होती है। अत: यह बात बराबर ध्यान में रखते हुए कि साहित्य का अखण्ड परम्परा का निरूपण ही साहित्य का लक्ष्य है, समय-समय पर उपस्थित दिशा परिवर्तनों और रूप परिवर्तनों के अनुसार विकास क्रम का

अध्ययन करना एक अनिवार्य आवश्यकता बन जाती है। इस आवश्यकता के अनुरूप हिंदी साहित्येतिहास के काल-विभाजन की परंपरा विकसित हुई। हिंदी इतिहास लेखन परंपरा में काल विभाजन के विभिन्न आधारों ऐतिहासिक काल क्रम तथा आदिकाल आदि, शासक और उनके शासनकाल क्रम यथा ऐलिजाबेथ, मराठा आदि, लोक नायक और उनके प्रभाव कालक्रम अनुसार यथा चैतन्य काल, गांधी काल आदि साहित्य नेता एवं उसकी प्रभाव परिधि के अनुसार यथा भारतेन्दु, द्विवेदी, प्रसाद युग आदि, राष्ट्रीय सामाजिक अथवा सांस्कृतिक आंदोलन आदि के अनुसार यथा- भक्तिकाल, पुनर्जागरण काल आदि, साहित्यिक प्रवृत्ति के अनुसार यथा रीतिकाल, छायावाद, प्रगतिवाद आदि में से समान प्रकृत्ति और प्रवृत्ति के मुख्य आधार स्वीकारा गया है। इसके अनुसार साहित्यिक प्रवृत्तियों और रीति-आदर्शों का स्तम्भ वैषम्य ही साहित्य के काल-विभाजन का आधार हो सकता है। समान प्रकृति और प्रवृत्ति की रचनाओं का कालक्रम से वर्गीकृत अध्ययन कर साहित्य का इतिहासाकार सम्पूर्ण साहित्य सृष्टि का समवेत अध्ययन करने का प्रयास करता है। फलत: हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन में विभिन्न आधारों को लेकर एक परंपरा विकसित हुई।''

इकाई दो में आपने हिंदी साहित्येतिहास लेखन की सम्पूर्ण परम्परा का अध्ययन किया था तथा जाना था कि हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन का प्रारम्भ पारसी विश्वविद्यालय में उर्दू के प्रोफसर गार्सां द तासी के फ्रेंच भाषा में लिखे ग्रंथ 'द इस्तवार द ल लितेरेत्यूर ऐंदुई ए ऐंदूस्तानी' के 1839 ई. में प्रकाशित प्रथम भाग से हुआ था। 1847 ई. इसी ग्रंथ का दूसरा भाग प्रकाशित हुआ तथा द्वितीय संस्करण के अंतर्गत तीसरा संस्करण 1870 ई. में प्रकाशित हुआ। गार्सां द तासी के सम्पूर्ण इतिहास ग्रंथ को देखने के पश्चात् यह बात स्पष्ट रूप से समझ में आ जाती है कि यह ग्रंथ अपनी भीतरी बुनावट के आधार पर इतिहास ग्रंथ नहीं माना जा सकता। गार्सां द तासी का यह ग्रंथ कालक्रमानुसार न होकर लेखकों के वर्णानुक्रम से है।

इस प्रकार यह बात स्पष्ट है कि हिंदी साहित्येतिहास के प्रथम ग्रंथ में लेखक काल-विभाजन की समस्या से नहीं जूझा था। इसके पश्चात् आए दो महत्वपूर्ण इतिहास ग्रंथ (1) 'ए हिस्ट्री ऑफ उर्दू पोएम्स चीफली ट्रांसलेटेड फ्राम इस्त्वार द ल लितरेत्यूर ऐंदुई ऐ ऐंदुस्तानी' वाई. एफ0 फैलेन एण्ड मौलवी करीमुद्दीन विथ ऐडिशन्स। देहली कॉलेज, 1848'' एवं (2) शिवसिंह सेंगर कृत शिवसिंह सरोज (1878) भी इतिहास दृष्टि एवं काल-विभाजन के संदर्भ में अनुल्लेखनीय ग्रंथ कहे जा सकते हैं।

4.4.1 ग्रियर्सन द्वारा प्रतिपादित काल – विभाजन

इन ग्रंथों के पश्चात् सर्वप्रथम अंग्रेजी में अन्य महत्वपूर्ण ग्रंथ सर **जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन** (जनवरी, 1851-मार्च, 1941) द्वारा लिखित **'द मॉर्डन वर्नाक्यूलर लिट्रेचर ऑव हिन्दुस्तान' (1889)** है। यह ''पहला इतिहास ग्रंथ है जिसमें हमें काल-विभाजन मिलता है – भले ही हम उस विभाजन से सहमत न हों। किन्तु काल-विभाजन की दृष्टि से उसका बीजवपन करने वाला ग्रंथ होने की दृष्टि से,

उसका ऐतिहासिक महत्व है। उसे कोरा कवि-नामावली ग्रंथ कहना लेखक के साथ अन्याय करना होगा। कुछ बातों की दृष्टि से हमें इस ग्रंथ का ऋण स्वीकार करने में संकोच नहीं करना चाहिए। वैसे भी सर जॉर्ज ग्रियर्सन का नाम आधुनिक भारतीय साहित्य और भाषाओं के इतिहास में अमर रहेगा। 'लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इण्डिया' उनकी कीर्ति का जाज्वल्यमान स्तम्भ है। क्या हम भारतवासी कोई दूसरा लिंग्विस्टिक सर्वे दे सके हैं ? इस समय उनके इतिहास ग्रंथ में दिया गया काल-विभाजन विचारणीय है। स्वयं उन्हीं के शब्दों में :

"The work is divided into chapters, each roughly representing a period. The Sixteenth and Seventeenth Centuries, the Augustan age of Indian Vernacular poetry, occupy six chapters, not strictly divided according to groups of poets, commencing with the romantic poetry of Malik Muhammad and including amongst others the Krishna Cult of Braj, the works of Tulsi Das (To whom a special chapter has been allotted) and the technical School of poets founded by Kesab Das" (भूमिका, पृ0 XV)

उनके अध्यायों का क्रम एवं काल-विभाजन इस प्रकार है :

अध्याय 1. The Bardic Period 700-1300 A.D, (वीरगाथा काल 700-1300 ई.)

अध्याय 2. The Religious Revival of the fifteenth Centuary, (15वीं शताब्दी का धार्मिक जागरण)

अध्याय 3. The Romantic Poetry of Malik Muhammad 1540 A.D, (मलिक मुहम्मद जायसी का प्रेमकाव्य, 1540 ई.)

अध्याय 4. The Kishna Cult of Braj 1500-1600 A.D, (ब्रजभाषा का कृष्ण सम्प्रदाय,1500-1600 ई.)

अध्याय 5. The Mugal Court (मुगल दरबार)

अध्याय 6. Tulsi Das (तुलसीदास)

अध्याय 7. The Ars Poetica 1580-1692 A.D. (रीति काव्य, 1580-1692 ई.)

अध्याय 8. Other Successors of Tulsi Das 1600-1700 A,D. Part I Religious Poets (तुलसीदास के परवर्ती कवि, 1600-1700 ई. भाग-1 धार्मिक कवि), Part II other Poests (भाग-2, अन्य कवि)

अध्याय 9. The Eighteenth Century (अठारहवीं शताब्दी)

अध्याय 10. Hindustan under the company 1800-1857 A.D. (कम्पनीकालीन हिन्दुस्तान, 1800-1857 ई.)

अध्याय 11. Hindustan Under the Queen 1857-1887 A.D (साम्राजीकालीन हिन्दुस्तान, 1857-1887 ई.)''

''वास्तव में ग्रियर्सन ने शताब्दी-क्रम को अपने विभाजन और साहित्यिक प्रगति का मुख्य आधार माना है और उससे न तो विभिन्न युगों की मुख्य प्रवृत्ति स्पष्ट हो पाती है और न उस युग का समवेत रूप ही उभर पाता है1 उसमें बिखराव है।''

4.4.2 मिश्रबंधुओं द्वारा प्रस्तावित काल – विभाजन

जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन के पश्चात् मिश्रबंधुओं (गणेश बिहारी मिश्र, रावराजा राय बहादुर श्यामबिहारी मिश्र, रायबहादुर शुकदेवबिहारी मिश्र) द्वारा लिखित सर्वप्रसिद्ध ग्रंथ **'मिश्रबंधु विनोद** (हिंदी साहित्य का इतिहास तथा कवि कीर्तन) के पहले तीन भागों का प्रकाशन 1913 में हुआ। 1934 ई. में इस ग्रंथ के अंतिम भाग का प्रकाशन हुआ। 1934 ई. में इस ग्रंथ के अंतिम भाग का प्रकाशन हुआ। ''मिश्रबंधुओं ने कवियों की आलोचनाओं तथा जीवनी आदि विवरणों के उपकरण इकट्ठे किये; किन्तु हिंदी का साहित्यिक इतिहास लिखने की महत्वकांक्षा रखने वाले इन विद्वानों ने इन उपकरणों से इतिहास का स्थापत्य नहीं तैयार किया।''

मिश्रबंधुओं द्वारा प्रदत्त काल-विभाजन निम्न प्रकार है –

आदि प्रकरण

प्रारम्भिक एवं पूर्व माध्यमिक हिंदी

हिंदी की उत्पत्ति और काव्य लंक्षण

वैदिक समय से सं. 700 तक

पूर्व प्रारम्भिक हिंदी

(सं. 700 से 1347 तक)

(1) चंद पूर्व की हिंदी

(सं. 700 से 1200)

(2) रासो काल (1201-1347)

उत्तर प्रारम्भिक हिंदी

(सं. 1348-1444)

पूर्व माध्यमिक हिंदी

(सं. 1445-1560)

प्रौढ़ माध्यमिक प्रकारण

प्रौढ़ माध्यमिक हिंदी

(सं. 1561 से 1680)

अष्टछाप (सं. 1561-1630)

सौर काल

(सं. 1561 से 11630 तक)

गोस्वामी तुलसीदास तथा तुलसी-काल की हिंदी

(सं. 1631-1680)

पूर्व तुलसी काल

(सं. 1631-1645)

माध्यमिक तुलसी-काल

(सं. 1646-1670)

अन्तिम तुलसीकाल (सं. 1670-1680)

अलंकृत प्रकरण (सं. 1681-1790)

पूर्वालंकृत हिंदी

महाकवि सेनापत

सेनापति-काल (सं. 1681 से 1706)

बिहारी-काल (सं. 1707 से 1720)

भूषण-काल (सं. 1721 से 1750)

आदिम देव-काल (सं. 1751 से 1771

माध्यमिक देव-काल (सं. 1771 से 1790)

घनआनन्द

उत्तरालंकृत प्रकरण (सं. 1791 से 1889 तक)

उत्तरालंकृत हिंदी

दास-काल (सं. 1791 से 1810)

सूदन-काल (सं. 1811 से 1830)

रामचद्र-काल (सं. 1831 से 1855)

बेनी प्रवीन-काल (सं. 1856-1875)

पद्माकर-काल (सं. 1876-1989)

अज्ञात-कालिक प्रकरण

अज्ञात काल (जिन कवियों का काल-निरूपण न हो सका)

परिवर्तन प्रकरण (1890-1925)

परिवर्तनकालिक हिंदी

द्विजदेव-काल (1890-1915)

दयानन्द-काल (1916-1925)

''मिश्रबंधुओं के इस वर्गीकरण में भी तथ्य संबंधी अनेक असंगतियाँ हैं। इन्होंने जॉर्ज ग्रियर्सन की भॉति 'अपभ्रंश काल' को हिंदी साहित्य के साथ जोड़ दिया है। दो सौ वर्ष के माध्यमिक काल का दो भागों में विभाजन यह दर्शाता है कि सौ वर्ष के अनन्तर ही साहित्य प्रौढ़ हो गया जबकि पहले विभाजन में सात आठ वर्ष तक वह एक-सा रहा। अलंकृत काल के बाद 35 वर्ष की अवधि

परिवर्तन काल की रही। प्रत्येक काल के बाद दूसरे काल के बीच की कुछ अवधि परिवर्तन काल के रूप में ही रहती हैं। यदि इस प्रकार परिवर्तनकाल का विभाजन किया जाए तो प्रत्येक काल के बाद 'परिवर्तन या संक्रमण काल' होगा जो कि अनावश्यक और अव्यावहारिक है। अलंकृत काल का नामकरण साहितय की आंतरिक प्रवृत्ति पर आधारित है। जबकि अन्य नामकरण साहित्य में विकास का सूचक है। इन्होंने नामकरण में एक-सी पद्धति नहीं अपनाई है। लेकिन इसका तात्पर्य यह भी नहीं है कि मिश्रबंधुओं का इतिहास निरर्थक अथवा महत्वहीन है। वास्तव में अगर इन चंद दोषों को छोड़ दिया जाये तो मिश्रबंधुओं के प्रौढ़ और सुलझें हुए प्रयासों की सराहना करनी चाहिए।''

4.4.3 आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा प्रस्तावित काल – विभाजन

हिंदी साहित्येतिहास परम्परा में सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं इतिहास-दृष्टि सम्पन्न रचना आचार्य रामचंद्र शुक्ल (4 अक्टूबर, 1884-2 फरवरी, 1941) कृत हिंदी साहित्य का इतिहास (सन् 1929) है। अपने इतिहास के आरम्भ में ही आचार्य शुक्ल अपनी इतिहास-दृष्टि का परिचय देते हुए लिखते हैं, ''जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। आदि से अन्ततक इन्हीं चित्तवृत्तियों की परंपरा को परखते हुए साहित्य परम्परा के साथ उनका सामंजस्य दिखाना ही 'साहित्य का इतिहास' कहलाता है। जनता की चित्तवृत्ति बहुत कुछ राजनीतिक, सामाजिक, सांप्रदायिक तथा धार्मिक परिस्थिति के अनुसार होती है। अत: कारण स्वरूप इन परिस्थितियों का किंचित् दिग्दर्शन भी साथ ही साथ आवश्यक होता है।'' इसी संदर्भ को विकसित करते हुए आचार्य शुक्ल हिंदी साहित्य के 900 वर्षों के विकासात्मक कालखण्ड को सर्वमान्य विभाजन के रूप में निम्नलिखित 4 काल-खण्डों में विभाजित करते हैं, ''उपर्युक्त व्यवस्था के अनुसार हम हिंदी साहित्य के 900 वर्षों के इतिहास को चार कालों में विभक्त कर सकते हैं –

आदिकाल (वीरगाथाकाल, संवत् 1050-1375)

पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल, संवत् 1375-1700)

उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल, संवत् 1700-1900)

आधुनिक काल (गद्यकाल, संवत् 1900-1984)

प्रस्तुत काल विभाजन को व्याख्यायित करते हुए आचार्य ने लिखा, ''यद्यपि इन कालों की रचनाओं की विशेष प्रवृत्ति के अनुसार ही उनका नामकरण किया गया है, पर यह न समझना चाहिए कि किसी विशेष प्रवृत्ति के अनुसार ही उनका नामकरण किया गया है, पर यह न समझना चाहिए कि किसी विशेष प्रवृत्ति के अनुसार ही उनका नामकरण किया गया है, पर यह न समझना चाहिए कि किसी

विशेष काल में और प्रकार की रचनाएं होती ही नहीं थीं। जैसे, भक्तिकाल या रीतिकाल को लें तो उसमें वीररस के अनेक काव्य मिलेंगे जिनमें वीर राजाओं की प्रशंसा उसी ढंग की होगी जिस ढंग की वीरगाथाकाल में हुआ करती थी। अत: प्रत्येक काल का वर्णन इस प्रणाली पर किया जाएगा कि पहले तो उक्त काल की विशेष प्रवृत्तिसूचक उन रचनाओं का वर्णन होगा जो उस काल के लक्षण के अंतर्गत होगी, पीछे संक्षेप में उनके अतिरिक्त और प्रकार की ध्यान देने योग्य रचनाओं का उल्लेख होगा। इस प्रकार आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'स्वयं के द्वारा किए गए आचार्य रामचंद्र शुक्ल के द्वारा प्रदत्त काल-विभाजन का विश्लेषण करते हुए डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने लिखा है कि आचार्य शुक्ल द्वारा किए गए काल-विभाजन के दो आधार थे। वाह्य परिस्थितियों के कारण बदली हुई चित्तवृत्ति के फलस्वरूप एक विशेष काल में विशेष ढंग की रचनाओं की प्रचुरता के अतिरिक्त अन्य प्रकार की रचनाएं भी हो सकती हैं। किन्तु प्रचुर मात्रा में हुई रचनाएं ही ध्यान में रखी जाएंगी। एक विशेष काल में एक विशेष ढंग के ग्रंथों की प्रसिद्धि जिनसे उस काल की लोक-प्रवृत्ति प्रतिध्वनित होती हो।''

''आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने जो काल-विभाजन प्रस्तुत किया है, वह न केवल प्रौढ़ है, अपितु आजकल भी एक सीमा तक मान्य है। इसमें केवल एक ही त्रुटि नजर आती है और वह भी इसिलए कि नये अनुसंधानों ने उस त्रुटि की ओर इशारा कर दिया है। वह त्रुटि यह है कि शुक्ल जी ने अपने अपभ्रंश युग को हिंदी साहित्य का आदिकाल माना है. यह तथ्य वर्तमान अनुसंधानों के परिप्रेक्ष्य में तर्कसंगत नहीं लगता है। यद्यपि यह सत्य है कि शुक्ल जी ने आदिकाल की सीमा 1050 से प्रारंभ मानकर यथार्थ से अधिक निकट जाने का प्रयास किया है। आचार्य शुक्ल ने जो काल-विभाजन प्रस्तुत किया है, उसके संबंध में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कुछ मौलिकताएं प्रस्तुत की हैं। द्विवेदी जी ने प्राचीन परम्पराओं के सातत्य की खोज की और इसी आधार पर शुक्ल जी की कतिपय मान्यताओं में संशोधन किया है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने शुक्ल जी की ऐतिहासिक दृष्टि के स्थान पर परम्परा का महत्व प्रतिपादित किया और उन मान्यताओं का खण्डन किया जो एकांगी दृष्टिकोण पर टिकी हुई थीं। इसी कारण द्विवेदी जी ने भक्ति आंदोलन के स्रोतों की खोज की तथा दक्षिण भारत के सातवीं-आठवीं शताब्दी से चल रहे वैष्णव भक्ति आंदोलन पृष्ठभूमि की विस्तार से चर्चा की। उन्होंने इस धारणा को निर्मूल बतलाया कि भक्ति आंदोलन इस्लामी आतंक की प्रतिक्रिया का परिणाम था। द्विवेदी जी ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि ''मैं इस्लाम के महत्व को नहीं भूल रहा हूँ लेकिन जोर देकर कहना चाहता हूँ कि अगर इस्लाम नहीं आया होता तो भी इस साहित्य का बारह आना वैसा ही होता, जैसा आज है।'' द्विवेदी जी ने संत, काव्य परम्परा को सिद्धों नाथों से तथा प्रेमाख्यानों को संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश को काल परंपरा से जोड़ा। इस संदर्भ में उन्होंने 'हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास तथा 'हिंदी साहित्य का आदिकाल' जैसी रचनाओं में अपने विचारों को व्यवस्थित रूप देकर प्रस्तुत किया। इसमें कोई संदेह नहीं कि आचार्य द्विवेदी पहले विद्वान थे, जिन्होंने आचार्य शुक्ल की मान्यताओं को चुनौती दी और पुष्ट प्रमाणों के आधार पर हिंदी साहित्य

अध्येताओं के निमित्त एक व्यापक और संतुलित इतिहास दर्शन की पीठिका तैयार की। यह भी निर्विवाद है कि शुक्ल जी ने जहॉ युग की स्थिति पर जो दिया, वहीं आचार्य द्विवेदी जी ने परम्परा पर ऐसी स्थिति में दोनों के मत एक-दूसरे के पूरक लगते हैं। डॉ. हुकुमचंद्र राजपाल का यह कथन उचित है कि ''आचार्य द्विवेदी ने आचार्य शुक्ल द्वारा प्रतिपादित प्रथम तीन कालखण्डों को पूर्णत: झकझोर देने के बाद भी अपनी ओर से उनमें परिवर्तन का कोई प्रयास नहीं किया। वस्तुत: उन्होंने अपनी धारणाओं को आचार्य शुक्ल द्वारा प्रतिपादित मूल ढॉचे के अंतर्गत ही रखा। इसी कारण उनके इतिहास की रूपरेखा काल-विभाजन पद्धति व काव्यधारा की नियोजना में आचार्य शुक्ल के अनुरूप रही''

''आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भक्ति के साहित्य को निर्गुण और सगुण दो धाराओं में विभाजित किया साथ ही निर्गुण धारा का अध्ययन और मूल्यांकन ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी शाखाओं के रूप में प्रस्तुत किया। इतना ही नहीं, आधुनिक काल को भी उन्होंने पहले तो गद्य-खण्ड और पद्य-खण्ड में विभाजित किया, फिर प्रत्येक खण्ड को तीन-तीन उपखण्डों में विभाजित कर प्रथमोत्थान काल, जिसकी सीमा संवत् 1925 से 1950 तक द्वितीय उत्थान-जिसकी सीमा संवत् 1950 से 1975 तक, तृतीय उत्थान-संवत् 1975 के बाद तक । पहले और दूसरे उत्थान के विषय में शुक्ल जी ने यह भी संकेत किया है कि इन दोनों उत्थानों को क्रमश: भारतेन्तु युग और द्विवेदी युग भी कहा जा सकता है। कहने का अभिप्राय यह है कि आचार्य शुक्ल ने जो काल-विभाजन प्रस्तुत किया, उसमें जो असंगतियाँ थी उन्हें दूर करने का यथासंभव प्रयास आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कुशलतापूर्वक किया।

4.4.4 डॉ. रामकुमार वर्मा द्वारा प्रस्तावित काल –विभाजन

''आचार्य रामचंद्र शुक्ल के पश्चात् डॉ. रामकुमार वर्मा ने 'हिंदी साहितय का आलोचनातम्क इतिहास' में काल विभाजन को एक नयी दिशा प्रदान करने की चेष्टा की। उनके द्वारा किया गया काल विभाजन निम्नांकित है – संधिकाल (संवत् 700 से 1000 वि0 तक), चारण काल (संवत् 1000 से 1375 वि0 तक), भक्तिकाल (संवत् 1375 से 1700 वि0 तक), रीतिकाल (संवत् 1700 से 1700 वि0 तक), आधुनिक काल संवत् (1900 से अब वि0 तक), डॉ. गणपितचंद्र गुप्त ने लिखा है कि ''डॉ. रामकुमार वर्मा के काल-विभाजन के अंतिम चार कालखण्ड तो आचार्य शुक्ल के ही विभाजन के अनुरूप हैं, केवल वीरगाथाकाल के स्थान पर चारणकाल नाम अवश्य दे दिया गया है, किन्तु इसमें एक विशेषता संधिकाल की है, जो वस्तुत: गुण वृद्धि का सूचक कम एवं दोष वृद्धि का द्योतक अधिक है।'' कुछ विद्वानों ने चारणकाल नामकरण को भी असंगत बतलाया है। उनके अनुसार उस युग के काव्य रचयिता चारण नहीं, वरन् भाट, भट्ट अथवा ब्रह्मभट्ट थे। इस प्रकार संधिकाल नामकरण के द्वारा रूढि त्याग एवं नवीनता ग्रहण का साहस अवश्य दिखाया गया है, किन्तु उसमें भ्रामकता अधिक है, निश्चयात्मकता कम।''

4.4.5 डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त द्वारा प्रस्तावित काल – विभाजन

''डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त ने हिंदी साहित्य का सैद्धान्तिक इतिहास लिखा है। डॉ.गुप्त ने अपने इतिहास में काल विभाजन का एक नवीन प्रयास किया है। उनके द्वारा किए गए विभाजन का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है –

प्रारम्भिक काल (सन् 1184 से 1350 तक)

मध्यकाल (सन् 1350 से 1857 तक)

क. पूर्व मध्यकाल (उत्कर्षकाल सन् 1350 से 1500 तक)

ख. मध्यकाल (चरमोत्कर्षकाल सन् 1500 से 1600 तक)

ग. उत्तरमध्यकाल (अपकर्षकाल सन् 1600-1857 तक)

आधुनिक काल (सन् 1857 से 1965 तक)

क. भारतेन्दु युग (सन् 1857 से 1965 तक)

ख. द्विवेदी युग (सन् 1857 से 1965 तक)

ग. छायावाद युग (सन् 1920 से 1937 तक)

घ. प्रगतिवादी युग (सन् 1937 से 1945 तक)

ड. प्रयोगवादी युग (सन् 1945 से 1965 तक)

यद्यपि डॉ. गुप्त ने काल-विभाजन की वैज्ञानिक बनाने का भरपूर प्रयास किया, तथापि स्वयं उन्होंने अपने 'आधुनिक काल' को अनेक दृष्टियों से त्रुटिपूर्ण स्वीकार किया है, यथा- ''भारतेन्दु युग एवं द्विवेदी युग में विकसित होने वाली काव्य परम्परा एक ही है, दो नहीं, जैसाकि इस युग विभाजन से भ्रम होता है। सन् 1920,1937,1945 में नयी परम्पराएं भी उनके साथ अग्रसर रहती हैं। आदर्शवादी उनके साथ अग्रसर रहती हैं। आदर्शवादी, छायावादी, प्रगतिवादी, पयोगवादी परम्पराएं अन्तत: समानान्तर बहने वाली परम्पराएं हैं, यह दूसरी बात है कि उनका उदय क्रमश: होता है।''

4.4.6 अन्य विद्वानों द्वारा प्रस्तावित काल – विभाजन

काल विभाजन के जितने प्रयास किए गए हैं, उनमें प्रमुख का उल्लेख किया जा चुका है। अब कुछ ऐसे काल विभाजन भी हैं जो सम्पादित ग्रंथों में दिए गए हैं। हम चाहें तो इन्हें सामूहिक प्रयास भी कह सकते हैं। ऐसे काल विभाजन भी हैं जो सम्पादित ग्रंथों में दिए गए हैं। हम चाहें तो इन्हें सामूहिक

प्रयास भी कह सकते हैं। ऐसे प्रयासों में डॉ. धीरेन्द्र वर्मा द्वारा सम्पादित हिंदी साहित्य विशेष उल्लेखनीय है। इस ग्रंथ में सम्पूर्ण हिंदी साहित्य को तीन कालों में विभाजित किया गया है – आदिकाल, मध्यकाल और आधुनिक काल। ऐसा करके इस ग्रंथ में प्रत्येक काल की काव्य परम्पराओं का विवरण प्रस्तुत कर दिया गया है। नागरी प्रचारिणी सभी द्वारा 'हिंदी साहित्य का वृहत् इतिहास' भी इसी प्रकार की विशाल योजना का परिणाम है जो सोलह खण्डों में प्रस्तुत हुआ है। डॉ. नगेन्द्र द्वारा सम्पादित हिंदी साहित्य का इतिहास' भी सामूहिक लेखन का ही परिणाम है, जो इतिहास सामूहिक लेखन के रूप में सामने आए हैं, उनकी अपनी दुर्बलताएं हैं। सबसे बड़ी दुर्बलता इन ग्रंथो में यह देखने को मिलती है कि प्रत्येक काल खण्ड के विवेचन में संतुलन से काम नहीं लिया गया है। लेखकों ने अपनी रूचि के अनुकूल कहीं अधिक विस्तार दे दिया है तो कहीं सामग्री को संक्षेप में समेट कर चलता कर दिया है। दूसरी दुर्बलता यह मिलती है कि अलग-अलग लेखकों ने अपनी मान्यताओं को महत्व दिया है, इसलिए अन्तर्विरोध भी साफ झलकते हैं। अब प्रश्न है कि ऐसी स्थिति में क्या किया जाए ? हमारी दृष्टि में काल-विभाजन न केवल सुविधाजनक होना चाहिए, अपितु वह स्पष्ट और व्यवहारिक भी होना चाहिए। यह सत्य है कि कोई भी काल विभाजन अपने आप में सम्पूर्णता का दावा नहीं कर सकता है, फिर भी ऐसा प्रयास तो किया ही जा सकता है जो सुविधाजनक हो और कम से कम आपत्तिजनक हो।''

अभ्यास प्रश्न –

(अ) अति लघु उत्तरीय प्रश्न –

1. हिंदी साहित्य के प्रथम इतिहास लेखन कौन थे।

2. ग्रिर्यसन की हिंदी साहित्येतिहास विषयक पुस्तक का नाम बताइये।

3. शिवसिंह सरोज का प्रकाशन कब हुआ।

4. आचार्य शुक्ल ने हिंदी साहित्य के प्रथम युग को किस नाम से चिन्हित किया।

(ख) सही/गलत बताइए –

1. गार्सां द तासी के साहित्येतिहास के प्रथम भाग का प्रकाशन 1939 ई. में हुआ –

2. ग्रियर्सन ने हिंदी साहित्य के प्रथम काल को 'The Bardic Period' कहा –

3. आचार्य शुक्ल ने हिंदी साहित्य के इतिहास को पॉच प्रमुख कालों में विभाजित किया है।

4. 'हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' पुस्तक के लेखक डॉ. श्याम सुंदर दास हैं।

(ग) लघु उत्तरीय प्रश्न –

1. हिंदी साहित्य के इतिहास के संदर्भ में काल विभाजन की समस्या पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

2. आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा प्रदत्त काल-विभाजन की संक्षिप्त व्याख्या अपने शब्दों में कीजिए।

4.5 सुविधाजनक और उपयोगी काल-विभाजन

''आचार्य शुक्ल ने जो काल-विभाजन प्रस्तुत किया है, वह बावजूद कतिपय असंगतियों के आज भी अपना औचित्य बनाए हुए है। सुविधाजनक काल विभाजन इस प्रकार किया जा सकता है –

1. आदिकाल (सन् 650 से 1350 तक) 2. भक्तिकाल (सन् 1350 से 1650 तक)

3. रीतिकाल (सन् 1650 से 1857 तक) 4. आधुनिक काल (सन् 1857 से आज तक)''

4.6 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप –

- हिंदी साहित्य की प्रमुख समस्याओं में से सर्वाधिक महत्वपूर्ण समस्या-काल विभाजन, की समस्या से परिचित हो चुके होंगे।
- साहित्येतिहास, हिंदी साहित्येतिहास एवं काल-विभाजन के पारस्परिक अन्तर्संबधों का ज्ञान प्रात कर चुके होंगे।
- विभिन्न साहित्येतिहासकारों द्वारा प्रदत्त काल-विभाजन की प्रक्रिया एवं उसकी महत्ता से परिचित हो चुके होंगे।
- काल-विभाजन के संदर्भ में सम्पूर्ण हिंदी साहित्य की विकासात्मक प्रक्रिया का ज्ञान प्राप्त कर चुके होंगे।

4.7 शब्दावली

1. परिप्रेक्ष्य – संदर्भ
2. क्रमिक – क्रम से
3. युगानुरूप – समय के अनुरूप
4. वर्णानुक्रम – वर्णों के क्रम से

5. जाज्वल्यमान – चमकदार

6. माध्यमिक – बीच का

7. दिग्दर्शन – दिशा का ज्ञान

4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.3 के अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

(क) सही अथवा गलत लिखिए –

1. गलत।

2. सही।

3. सही।

4. गलत।

4.4 के अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

(अ) अति लघु उत्तरीय

1. गार्सां द तासी

2. द मॉर्डन वर्नाक्यूलर लिट्रेचर ऑफ हिन्दुस्तान

3. 1878 ई. में।

4. वीरगाथाकाल

(ख) सही गलत बताइये –

1. सही

2. सही

3. गलत

4. गलत

4.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. वार्ष्णेय, लक्ष्मीसागर, इतिहास और साहित्येतिहास, 1984, भारतीय साहित्य प्रकाशन, मेरठ, पृष्ठ 101-102
2. शर्मा, हरिचरण, हिंदी साहित्य का आधुनिक काल, 2007, मलिक एण्ड कम्पनी, जयपुर, पृष्ठ 8-9
3. उपरोक्त, पृष्ठ, 8-9
4. सिंह, त्रिभुवन, साहित्यिक निबंध, हिंदी प्रचारक संस्थान, 1976, पृष्ठ 04
5. पूर्वोक्त, पृष्ठ 05
6. पूवोक्त, पृष्ठ 07
7. वार्ष्णेय, लक्ष्मीसागर, पूर्वोक्त, पृष्ठ, 116-117
8. वार्ष्णेय लक्ष्मीसागर, पूर्वोक्त, पृष्ठ, 117
9. शर्मा, नलिन विलोचन, साहित्य का इतिहास-दर्शन, सं. 2016, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, पृष्ठ-85
10. शर्मा, हरिचरण, पूर्वोक्त, पृष्ठ-11
11. शुक्ल, रामचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, 2010, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, पृष्ठ-21
12. पूर्वोक्त, पृष्ठ- 21
13. पूर्वोक्त, पृष्ठ
14. वार्ष्णेय, पूर्वोक्त, पृष्ठ ,123
15. शर्मा, हरिचरण, पूर्वोक्त, पृष्ठ,11,13
16. शर्मा, हरिचरण, पूर्वोक्त, पृष्ठ ,13-14
17. शर्मा, हरिचरण, पूर्वोक्त, पृष्ठ ,14
18. शर्मा, हरिचरण, पूर्वोक्त, पृष्ठ ,14

4.10 सहायक पाठ्यसामग्री

साहित्य का इतिहास-दर्शन, नलिन विलोचन शर्मा, सं. 2016, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना

हिंदी साहित्य का आधुनिक काल, डा. हरिचरण शर्मा, 2007, मलिक एण्ड कम्पनी, जयपुर।

इतिहास और साहित्येतिहास, लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, 1984, भारतीय साहित्य प्रकाशन, मेरठ।

हिंदी साहित्य में युग निर्धारण, सुधा अग्रवाल साहित्य प्रकाशन, दिल्ली।

हिंदी साहित्य का इतिहास-दर्शन, शिवकुमार मैकमिलन कम्पनी ऑफ इण्डिया, दिल्ली।

4.11 निबंधात्मक प्रश्न

(क) हिंदी साहित्येतिहास के परिप्रेक्ष्य में साहित्य की प्रमुख समस्याओं पर एक वृहद् निबंध लिखिए।

(ख) काल-विभाजन की समस्या से आप क्या समझते हैं ? हिंदी साहित्य के संदर्भ में काल-विभाजन पर विभिन्न विद्वानों के मतों का विश्लेषण कीजिए।

इकाई 5 हिन्दी साहित्य का आदिकालः उद्भव एव विकास

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 आदिकाल की अवधारण और सीमा निर्धारण
  5.3.1 आदि काल या वीरगाथा काल
  5.3.2 नामकरण वैविध्य
  5.3.3 आदिकालः सीमा निर्धारण
5.4 आदिकाल आधारभूत समाग्री
  5.4.1 आदिकाल की नव्य सामग्री
  5.4.2 आदिकाल की प्रतिनिधि रचनाएं
5.5 सारांश
5.6 शब्दावली
5.7 सहायक पाठ्य सामग्री
5.8 निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम से सम्बंधित है। इस इकाई के अध्ययन से पूर्व आपने हिन्दी साहित्येतिहास की सम्पूर्ण परम्परा एवं साहित्येतिहास की विभिन्न समस्याओं के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त किया।

प्रस्तुत इकाई में आप हिन्दी साहित्य से प्रथम काल खण्ड आदिकाल के उद्भव एवं विकास का अध्ययन करेंगे। इस इकाई के अंतर्गत आप यह भी जानेंगे की हिन्दी साहित्येतिहासकारों को आदिकाल से सम्बंधित कौन -कौन सी समस्याओं का सामना करना पड़ा है। आदिकालीन कविता के उदय की पृष्ठभूमि तथा आदिकालीन कविता के नामकरण तथा सीमांकन का अध्ययन भी इस इकाई में किया गया है।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप –

- काल निर्धारण की आधार सामग्री पर विद्वानों का मतान्तर क्यों रहा है, इसे समझ सकेंगे।
- आदिकाल की पृष्ठभूमि क्या थी, यह जान सकेंगे।
- आदिकालीन सामान्य प्रवृत्तियों को जान पायेंगे तथा साथ हि साथ यह भी जान सकेंगे कि आदिकाल के विकास का स्वरूप क्या है।
- विभिन्न साहित्येतिहासकारों के मत-मतान्तरों की समीक्षा कर सकेंगे।

5.3 आदिकाल की अवधारणा और सीमा निर्धारण

5.3.1 आदिकाल या वीरगाथा काल

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा हिन्दी साहित्य के काल-विभाजन में प्रथम काल -खण्ड को वर्गीकृत करते हुए नाम दिया गया था - वीरगाथा काल (आदिकाल- सं0 1050-1350)। विकल्प रूप में उन्होंने वीरगाथा काल को आदिकाल भी कहा क्योंकि बारह आधार ग्रन्थों में से चार अपभ्रंश भाषा की रचनाएँ थी। उन्होंने बताया कि जयचन्द्र प्रकाश, जयमंयक जसचंद्रिका (भट्ट केदार और मधुकर कवि) सूचना (नोटिस) मात्र है। हम्मीर रम्सो (शारंगधर कवि) का आधार प्राकृत-पैगंलम् में आगत कुछ पद्य हैं और वह काव्य आधा ही प्राप्त है। विजयपाल रासो के सौ छन्द ही प्राप्त हुए है, इस प्रकार यह ग्रन्थ भी अधूरा और वीसलदेव रासो की भाँति प्रेमगाथा काव्य है। वीरगाथा नहीं। अमीर खुसरो की पहेलियाँ भी वीरगाथा के अंतर्गत ग्राह्य नहीं है। पृथ्वीराज रासों की प्रामाणिकता

जितनी संदिग्ध है उतनी ही परमाल रासो की क्योंकि वह लोक (श्रुत) काव्य आल्हा है। मूल पाठ का निर्धारण असंभव है।

आचार्य शुक्ल के पास जो अन्य सामग्री स्त्रोत उपलब्ध होते थे, वे उन्होनें धार्मिक एवं सांप्रदायिक मूलक बताए थे, पर परवर्ती शोध कार्यों से यह विदित होता है कि ये धार्मिक और सम्प्रदाय मूलक ग्रन्थ साहित्यिक उदारता से शून्य नहीं थे। तभी आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा था कि - धार्मिक प्रेरणा या आध्यत्मिक उपदेश होना काव्य का बाधक नहीं समझा जाना चाहिए अन्यथा हमें रामायण, महाभारत, भागवत एवं हिन्दी के रामचरित मानस, सूरसागर आदि साहित्यिक सौन्दर्य संवलित अनुपम ग्रंथ-रत्नों को भी साहित्य की परिधि से बाहर रखना पड़ जाएगा। (हिन्दी साहित्य का आदिकाल, प्रथम व्याख्यान,पृष्ठ 49)

साहित्य का इतिहास न तो इतिहास के वृत्ति प्रस्तुति का निरूपण है और न प्रशस्ति मूलक सम्वेदना। उसमें साहित्येतिहासकार के भीतर साहित्यकार की सम्वेदना का समाहार अनिवार्य है। तभी वह साहित्यिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं सामाजिक प्रवृत्तियों की संरचना से ही काल विशेष की संज्ञा प्राप्त कर सकता है।

5.3.2 नामकरण वैविध्य और आधार

हिन्दी साहित्य के इस आदिकाल विकल्प की उपेक्षा करते हुए रामचन्द्र शुक्ल से पूर्ववर्ती मिश्रबन्धु (मिश्रबन्धु विनोद) ने उसे प्रारम्भिक काल, महावीर प्रसाद द्विवेदी ने उसे बीजवपन काल, रामकुमार वर्मा ने उसे संधिकाल एवं चारण काल, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने वीरकाल एवं बच्चन सिहं ने अपभ्रंशकाल नाम दिया है । काल विभाजन और नामकरण प्रवृत्तिपरक होता है। यह आप समझ चुके हैं, पर यह भी समझना उचित होगा कि ये दो अलग प्रश्न नहीं है, मूलतः एक ही है। जिस प्रकार रचना की प्रवृत्ति काल-विभाजन का आधार है, उसी प्रकार वह नामकरण का भी महत्वपूर्ण आधार है। नामकरण के निर्मिति में तद्विषयक रचना कृतियों की बहुलता है और उन रचनाओं में प्रवृत्ति मूलक प्रतिशत निकालकर काल खण्ड विशेष का नामकरण किया जाता है। परिवर्ती हिन्दी साहित्येतिहाकारों में सभी एकमत से स्वीकार करते हैं कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का हिन्दी साहित्य का इतिहास सर्वमान्य है . कुछ मूल प्रश्नों को छोड़ कर शेष सम्पूर्ण ढांचा लगभग सर्वमान्य है .

5.3.3 आदिकाल: सीमा निर्धारण

हिन्दी साहित्य के आरंभिक काल पर विद्वानों में पर्याप्त मत-भेद है। इस के मूल में महत्वपूर्ण कारण अपभ्रंश भाषा की हिन्दी में स्वीकृति या हिन्दी से बहिष्कृति की मानसिकता है। पूर्व खण्ड के अध्ययन के बाद आप यह अवश्य ही जान गए हैं कि सम्पूर्ण भारतीय वाङमय में अपभ्रंश भाषा प्रचलित थी। उसमें कौन से परिवर्तनकारी बिंब कब आरंभ हुए इसको सहज रूप में कह पाना संभव नहीं है, किन्तु यह तो स्पष्ट है कि हिन्दी भाषा में ये परविर्तन सहज ही उभरते गए है। वास्तव में

अपभ्रंश भाषा जब परिनिष्ठित और साहित्यिक भाषा के रूप में विकसित हुई, तब तक वह जनभाषा से दूर हो गई और उस अपभ्रंश से इतर जनभाषा से ही हिन्दी का विकास होता है। उस समय यह अपभ्रंश ही एक नई भाषा (या पुरानी हिन्दी) के रूप में विकसित हो रही थी। हिन्दी के आरंभिक रूप का परिचय बौद्ध तांत्रिकों की रचनाओं में मिलता है। तभी गुलेरी ने लिखा है कि "अपभ्रंश या प्राकृतभास हिन्दी के पद्यों का सबसे पुराना पता तांत्रिकों और योगमार्गी बौद्धों की सांप्रदायिक रचनाओं के भीतर विक्रम की सातवीं शताब्दी के अंतिम चरण में लगता है।"

जार्ज ग्रियर्सन आदिकाल को 'चारण काल' कहते हैं और इसका आरंभ 643 ई. से मानते हैं जबकि चारण काव्य परम्परा का विकास तब नहीं हुआ था क्योंकि वह काल-खण्ड नाथों-सिद्धों का सर्जन काल था। चारण काल एवं साहित्य का आविर्भाव दसवीं शताब्दी के बाद ही होता है। इसलिए ग्रियर्सन के विचार त्याज्य है। मिश्रबंधुओं ने आदिकाल का नामकरण करते हुए प्रवृत्ति का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है। डॉ.रामकुमार वर्मा ने इस काल खण्ड को 'संधिकाल' और 'चारण काल' कहा है।

अभ्यास प्रश्न 1

1. वीरगाथाकाल नामकरण क्यों अस्वीकार है ?
2. आदिकाल के विकल्प का चयन क्यों आवश्यक समझा गया ?

5.4 आदिकाल की आधारभूत सामग्री

5.4.1 आदिकाल की नव्य सामग्री

अभी तक के अध्ययन के उपरान्त आज यह भली भाँति जान चुके हैं कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा आदिकाल के लिए गृहीत बारह पुस्तकों की विषय-सामग्री वीरगाथा काल के नाम की सार्थकता सिद्ध नहीं कर पाती कुछ मात्र नोटिस या सूचना मात्र थीं कुछ वीर गाथात्मक प्रवृत्तिमूलक नहीं थीं, कुछ अपूर्ण और प्रेमपरक थी। अतः विकल्प के रूप में आदिकाल को ही आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने समर्थन दिया है। इस प्रकार आदिकाल नामकरण के निर्धारण में आधारभूत सामग्री निम्नांकित है।

1.	स्वयंभू	-	पउम चरिउ (पद्म चरित-रामचरित) रिट्णेमि चरिउ (अरिष्टनेमि चरित)
2.	पुष्पदन्त	-	पाय कुमार चरिउ (नागकुमार चरित)
3.	हरिभद्र सूरि	-	णेमिनाथ चरिउ (नेमिनाथ चरित)
4.	धनपाल	-	भविष्यतकथा, करकंड चरिउ, जसहर चरिउ
5.	जोइन्दु	-	परमात्मा प्रकाश

6. रामसिंह	-	पाहुड़ दोहा
7. सरहपा	-	दोहाकोश
8. अद्दहमाण	-	संदेश रासक
9. हेमचन्द्र	-	प्राकृत व्याकरण (दोहा काव्य)
10. दलपति विजय	-	बीसलदेव रासो
11. चन्दबरदाई	-	पृथ्वीराज रासो
12. कुशल शर्मा	-	ढोला मारूरा दूहा (लोककाव्य)
13. अज्ञात	-	वसंत विलास फागु
14. विद्यापति	-	कीर्तिलता, कीर्ति पताका
15. अमीर खुसरो	-	पहेलियां

5.4.2 आदिकाल की प्रतिनिधि रचनाएं

अभी तक आप आदिकाल की उपलब्ध नव्य सामग्री से परिचित हो चुके हैं। इकाई के इस भाग में आप आदिकाल की प्रतिनिधि रचनाओं से परिचित हो सकेंगे। इतना तो आप जान ही चुके हैं कि इस युग में शौर्य युक्त प्रवृत्तियों ही नहीं थी अपितु अन्य अनेक प्रवृत्तियों भी एक साथ उभरी थीं। परिणाम स्वरूप वीररसात्मक काव्य धारा के साथ श्रंगार रस सिक्त रचनाओं का प्रणयन भी हुआ। लोक कथाओं पर आधारित प्रेमकथाएं भी लिखी गई। लौकिक काव्य (पहेली और मुकरी) की भी रचना हुई। यही नहीं इस काल खण्ड में अगर अपभ्रंश भाषा कृतियों प्राप्त हुई हैं तो ब्रज-राजस्थानी मिश्रित भाषा और मैथिली में साहित्य सर्जना हुई थी साथ ही साथ खड़ी बोली में रचनाएँ प्राप्त हुई हैं.

1. पृथ्वीराज रासो
2. बीसलदेव रास
3. ढोल मारू रा देहा
4. विद्यापति काव्य
5. अमीर खुसरो की पहेलियाँ
6. प्राकृत व्याकरण
7. सन्देश रासक
8. भाविसत्त कहा
9. पाहुड़ दोहा

पृथ्वीराज रासो - रासोकाव्य परम्परा में अनेकशः रचनाएँ हुई हैं और इनमें स्वरूप वैविध्य भी हैं. पृथ्वीराज रासो आदिकाल की प्रतिनिधि कृति है। पृथ्वीराज रासो का रचयिता चन्द बरदाई

पृथ्वीराज चौहान का दरबारी कवि था तथा दरबारी काव्य परम्परा की प्रशस्ति मूलक रूढियों से भरे अपने आश्रय दाता के यशगान हेतु रासो की रचना की है।जैसा कि अभी संकेत किया जा चुका है कि पृथ्वीराज रासो प्रशस्ति काव्य है। कविचंदबरदाई ने अपने आश्रय दाता का प्रशस्ति परक वर्णन किया है तथा उसे ईश्वर तक कहा है और तत्कालीन राजनीति , धर्म,योग, कामशास्त्र, शकुन, नगर ,युद्ध ,सेना की सज्जा, विवाह, संगीत,नृत्य, फल,फूल, पशु,पक्षी, ऋतु-वर्णन, संयोग, वियोग, श्रंगार, बसंतोत्स्व इत्यादी सभी का वर्णन भारतीय काव्य शास्त्रीरय परम्परा के अनुरूप किया है। परिणामस्वरूप ऐतिहासिकता अनैतिहसिकता प्रामाणिकता अप्रमाणिकता के अनेक प्रश्नों के रहते हुए पृथ्वीराज रासो साहित्य और तत्कालीन समाज दोनों की चित्तवृत्तियों का प्रतिबिम्ब हैं ।पृथ्वीराज रासो के वर्ण्य-विषय पर विचार करते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं- पृथ्वीराज रासो ऐसी ही रस,भय,अलंकार, युद्धबद्ध कथा थी जिसका मुख्य विषय नायक की प्रेमलीला, कन्याहरण और शत्रु-पराजय था।

बीसलदेव रास - काल खण्ड के नाम के विकल्प - आदिकाल- के चयन और वीरगाथाकाल नाम के व्याज्य के निकर्ष पर देखा जाए तो पृथ्वीराज रासो में जहाँ वीर एवं श्रृंगार की प्रधानता है वहीं वीसल देव रास मूलतः श्रृंगार रस प्रधान ;विशेषकर वियोग श्रृगांर काव्य है । इसके रचयिता नरपति नाल्ह है और रचनाकाल 1155 ईस्वी माना जाता है।

वीसलदेव रास एक विरह काव्य है। जिसमें वीसल देव की रानी का विरह वर्णन किया गया है . भोज परमार की पुत्री राजमती से विवाह के तुरन्त बाद राजमती की गर्वोक्ति सुनकर वीसलदेव उड़ीसा चला जाता है। बारह वर्ष तक राजमती वियोग की ज्वाला में जलती रहती है। इसके बाद राजमती अपने राज पुरोहित से अपने पति के लिए सन्देश भिजवाती है। जब तक राजा लौटता है तब तक राजमती अपने पिता के घर जा चुकी होती है। बीसलदेव उड़ीसा से लौटकर अपनी ससुराल जाकर अपनी पत्नी को घर ले आता है।

ढोला मारू रा दूहा - अभी तक आपने आदिकाल की दो महत्वपूर्ण कृतियों का परिचय प्राप्त कर लिया है जो अपभ्रंश भाषा से इतर आदिकाल की तत्कालीन भाषा प्रवाह का परिनिष्ठित भाषा रूप लेकर रची गई है जो राजस्थान एवं ब्रज भाषा के साथ विविध भाषाओं की शब्दावली से युक्त हैं . इस बार आप लोकाश्रित एवं तत्कालीन लोक भाषा काव्य का परिचय पायेंगे। यह ढोला मारू रा दूहा नाम से प्रसिद्ध लोक गाथा काव्य है। लोक कथा या लोक गाथा का रचयिता व्यक्ति न होकर लोक ही होता हो और उसके पाठ में समयानुसार भिन्नता की सम्भवना होती है। ढोला मारू रा दूहा का रचयिता कुशल शर्मा कहे जाते हैं तथा इसका रचना काल ग्याहरवीं शताब्दी है।

विद्यापति काव्य - विद्यापति हिन्दी और आदिकाल के प्रमुख कवि हैं चौदहवी-पंद्रहवी शताब्दी के मध्य विद्यापति तिरहुत के राजा कीर्ति सिंह के दरबारी कवि थे और उनकी शौर्यता का चित्रण ही

कवि ने अपनी कीर्तिलता नामक पुस्तक में किया है। दूसरी ऐसी ही प्रशस्ति कथा कीर्तिपताका में है। इन दोनों काव्यों की भाषा को उन्होंने अवहटठ् ,अपभ्रंशद्ध कहा है

अमीर खुसरो पहेलियाँ - अमीर खुसरो आदिकाल के ऐसे प्रमुख कवि हैं जो अपने समय से आगे की खड़ी बोली के सूत्र-प्रसारक कहे जा सकते हैं। आचार्य रामचन्द्र के अनुसार उनका लेखन 1293 ई के आसपास आरम्भ हो गया था। उन्होंने तेरहवीं शताब्दी के आरंभ में दिल्ली के आसपास बोली जाने वाली भाषा में कविता की। लेकिन आप यह भी जान लीजिए कि अमीर खुसरो ने ब्रजभाषा में भी कविता लेखन किया था पर उस पर खड़ी बोली का स्पष्ट प्रभाव था यथा-

उज्जवल बरन अधीन तन एक चित्र दो ध्यान।

देखत में साधु है निकट पाप की खान।।

खुसरो रैन सुहाग की जागी पी के संग।

तन मोरो मन पीउ को दोउ भए एकरंग।।

गारी सोवे सेज पर मुख पर डारे केस।

चल खुसरो घर आपनै रैन भई यह देस ।।

अमीर खुसरो ने पहेलियों को देखकर ऐसा नहीं लगता कि ये आठ से आठ सौ से अधिक वर्ष पूर्व लिखी गई होंगी । यथा- एक थात मोती भरा सबके सिर आँधा धरा।
चारों ओर वह थाली फिरे। मोती उससे एक न गिरे।

अमीर खुसरो अरबी फारसी,तुर्की,ब्रज और हिन्दी के विद्वान कवि थे। साथ ही उन्हें संस्कृत भाषा का भी थोड़ा ज्ञान था। सूचना के स्तर पर आपको बताया जा सकता है कि उन्होंने 99 पुस्तकें लिखी थी । लेकिन इनके बीस,बाईस ग्रन्थ ही प्राप्त होते हैं।

प्राकृत व्याकरण - आदिकाल के अपभ्रंश काव्य के रूप में अब आप ऐसी कृति का परिचय पाऐंगे जो दसवीं शताब्दी में रचित सिद्ध हेमचन्द्र शब्दानुशासन के नाम से प्रसिद्ध व्याकरण ग्रन्थ है और उसके रचयिता हेमचन्द्र हैं। इस कृति में हेमचन्द्र ने संस्कृत,प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं का समावेश किया है किन्तु विशेष बात यह है कि अपभ्रंश का उदाहरण देते हुए उन्होंने पूरा दोहा ही उद्धृत किया है परन्तु उनके रचयिताओं के विषय में कोई संकेत नहीं किया है हेमचन्द्र के इस प्राकृत व्याकरण को आदिकाल की निर्णायक कृतियों के रूप में उल्लेख किया जाना आपको सहज ही आश्चर्य में डाल सकता है क्योंकि यह शब्दानुशासन यानी व्याकरण की पुस्तक ही प्रतीत होती लेकिन व्याकरण कृति होते हुए भी इसमें प्रयुक्त दोहों का चयन हेमचन्द्र ने पूर्ववर्ती या तद्युगीन

रचनाकारों की रचनाओं से किया है। ये दोहे व्याकरण से अधिक तत्कालीन समय एवं परिवेश का यथार्थ प्रस्तुत करते हैं क्योंकि ये दोहे उस काल की लोक भावनाओं से परिपूर्ण है।

सन्देश रासक - संदेशरासक अहद्द्माण या अब्दुर्रहमान रचित खण्ड काव्य है। अहद्दमाण कबीर की भाँति जुलाहा परिवार से थे तथा मुल्तान निवासी थे। उन्होंन स्वयं लिखा है - मैं मलेच्छ देशवासी तंतुवाय भीर सेन का पुत्र हूँ। उनकी कृति सन्देश रासक जो एक सन्देश काव्य है . इसके रचना काल के संबंध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है अतः इसे ग्यारहवी से चौदहवीं के मध्य की रचना माना जाता है।सन्देश रासक वियोग, विरह, श्रृंगार की रचना है । इसकी विषय-वस्तु के सम्बन्ध में इतना कहा जा सकता है कि प्रिय के परेदश जाने और वहाँ से लौटने में विलम्ब होने के कारण प्रियतमा पत्नी-नायिका का हृदय विरहकातर हो उठता है। अहद्द्माण ने इस कृति के बीच-बीच में प्राकृत गाथाएं संजोयी हैं। इसमें विरहिणी नायिका एक पथिक से पति को सन्देश भिजवाती है । कवि ने दो सौ तेईस छन्दों में कथा प्रस्तुत करते हुए प्रत्येक छन्द को स्वयं में स्वतंत्र रखा है क्योंकि कवि को विरहाभिव्यक्ति का उल्लेख करना है कथा कहना मात्र उसका उद्देश्य नहीं है . सन्देश रासक तीन प्रक्रमों में विभाजित और 223 छन्दों में रचित ऐसा सन्देश काव्य है जिसका अध्ययन करके आप यह विधिवत् जान पायेंगे कि इसका प्रथम प्रक्रम मंगलाचरण, कवि का व्यक्तिगत परिचय , ग्रन्थ रचना का उद्देश्य तथा आत्मनिवेदन से अनुपूरित है। दूसरे प्रक्रम से मूल कथा आरंभ होती है पर कथा सूत्र इतना ही है कि विजय नगर की एक प्रोषितपतिका अपने प्रिय के वियोग में रोती हुई एक दिन राजमार्ग से जाते हुए एक बटोही को देखती है और दौड़कर उसे रोकती है। उसे जब यह पता चलता है कि वह बटोही साभांर से आ रहा है और स्तंभ तीर्थ को जा रहा है तो वह पथिक से निवेदन करती है कि अर्थलोभ के कारण उसका प्रिय उसे छोड़ कर स्तम्भ तीर्थ चला गया है इसीलिए कृपा करके मेरा सन्देश को ले जाओ पथिक को संदेश देकर नायिका ज्यों ही उसे विदा करती है कि दक्षिण दिशा से उसका प्रिय आता हुआ दिखाई देता है। तीसरे प्रक्रम में अब्दुर्रहमान कृतिका समापन करता है जिसे पढ़कर निश्चित आप जान पायेंगे कि नायिका का कार्य अचानक सिद्ध हो जाता है .उसी प्रकार पाठकों को भी यह अनुभव होता है कि कवि को कथा से कोई भी मतलब नहीं था उसका उद्देश्य साम्भर नगर के जीवन, पेड़-पौधों तथा ऋतु वर्णन के साथ प्रोषितपतिका की विरह भावना का वर्णन करना था .काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से सन्देश रासक अपभ्रंश साहित्य में विशेष स्थान रखता है।

भविस्यत्त कहा - जैन कवि धनपाल रचित भविस्यत्त कहा अपभ्रश में लिखित दसवीं शती की ऐसी काव्य कृति है जिसमें तीन प्रकार की कथाएँ बाईस संधियों में जुड़ी हुई है। अभी तक आप यही जानते रहे हैं कि जैन काव्य धार्मिक है और आचार्य शुक्ल ने उन्हें हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन के निमित्त आधार ग्रंथ के रूप में गणनीय तक नहीं माना था। यद्यपि जैन साहित्य में धर्म से विलग साहित्यिक कृतियों का अभाव नहीं था। उन्ही में से एक कृति भविस्यत्त कहा है। यह वर्णन हृदयग्राही है जिसमें श्रृंगार एवं वीररस के साथ शान्त रस का परिपाक होता है।

आपके ज्ञानवर्द्धन के लिए यह उल्लेखनीय है कि कवि धनपाल का यह काव्य शुद्ध घरेलू ढंग की कहानी पर आधारित है जिसमें दो विवाहों का दुःखद पक्ष उभरता है। कणिक पुत्र भविष्यदत्त की कथा अपने सौतेले भाई बंधुदत्त द्वारा कई बार छले जाने ,जिन महिमा ,जैन चिन्तन के कारण सुखद परिणति तक पहुंचती है। यह प्रमुख कथा चौदह सन्धियों तक विस्तार पाती है।

पाहुड़ दोहा - राजस्थान के रामसिंह द्वारा लिखित दो सो बाईस दोहो ,छन्दों में लिखित लघुकाव्य पाहुड़ दोहा का संपादन परवर्ती काल में हीरालाल जैन द्वारा किया गया है। उनके अनुसार जैनियों में पाहुड शब्द का प्रयोग किसी विजय के प्रतिपादन के लिए किया जाता है। अब आप यह जान लीजिए कि इस कृति का रचना काल में वास्तव में ऐसा युग था जिसमें प्रत्येक धर्म के भीतर इसके उदारमना चिन्तक कवि पैदा हुए थे जो अपने मत और समाज की रूढियों का विरोध करते हुए मानवता की सामान्य भावभूमि पर एक साथ खडे थे। इसका अन्य मतों से कोई विरोध नहीं था। वे सबके प्रति सहिष्णु थे और उनका विश्वास था कि सभी मत एक ही दिशा की ओर ले जाते हैं और एक ही परमतत्व को विविध नामो से पुकारते हैं।

बोध प्रश्न . 2

1. आदिकाल की आधारभूत सामग्री क्या है ? संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए

2. **सुमेलित कीजिए**

पृथ्वीराज रासो	अब्दुर्रहमान
ढोला मारू रा दूहा	धनपाल
वीसलदेव रास	हेमचन्द्र
विद्यापति का काव्य	रामसिंह
पहेलियाँ	कुशलशर्मा
प्राकृतव्याकरण	चंद्रबरदाई
सन्देशरासक	नरपति नाल्ह
भविस्यत्त कहा	विद्यापति
पाहुड़ दोहा	अमीर खुसरो

5.5 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात आप -

- हिंदी साहित्येतिहास के अंतर्गत काल-निर्धारण की प्रक्रिया को जान चुके होंगे
- आदिकाल की पृष्ठभूमि एवं उसकी सामान्य प्रक्रिया का ज्ञान प्राप्त कर चुके होंगे
- आदिकाल के उद्भव एवं क्रमिक विकास को समझ चुके होंगे
- आदिकाल की प्रमुख पुस्तकों से परिचित हो चुके होंगे

5.6 शब्दावली

वैविध्य	-	विविधतापूर्ण , भिन्न-भिन्न
परवर्ती	-	बाद के समय का
वाङमय	-	साहित्य
आविर्भाव	-	पैदा होना
रस सिक्त	-	रस से भरा हुआ
इतर	-	अलग
सहिष्णु	-	उदार

5.7 सहायक पाठ्य सामग्री

(1) हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी।

(2) हिन्दी साहित्य का आदिकाल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।

(3) हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डॉ0 रामकुमार वर्मा,लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

(4) सांकृत्यायन, राहुल, हिन्दी काव्य-धारा, किताब महल, इलाहाबाद 1945

5.8 निबंधात्मक प्रश्न

1. हिन्दी साहित्य के आदिकाल के उद्भव एवं विकास पर एक विस्तृत निबंध लिखिए
2. आदिकाल की पृष्ठभूमि स्पष्ट करते हुए आदिकाल की प्रमुख रचनाओं का परिचय दीजिए

इकाई 6 हिंदी साहित्य का आदिकाल : स्वरूप और प्रक्रिया

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 आदिकाल:अर्थ एवं स्वरूप
6.4 आदिकालीन परिस्थितियाँ
6.4.1 राजनीतिक परिस्थितियाँ
6.4.2 धार्मिक एवं आर्थिक परिस्थितियाँ
6.4.3 सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियाँ
6.4.4 साहित्यिक परिस्थितियाँ
6.5 आदिकाल:प्रमुख प्रवृत्तियां
6.5.1 धर्म संबंधी साहित्य
6.5.2 सिद्ध काव्य
6.5.3 नाथ काव्य
6.5.4 जैन काव्य
6.5.5 चारण काव्य
6.5.6 लौकिक काव्य
6.6 आदिकालीन काव्य प्रक्रिया
6.7 सारांश
6.8 शब्दावली
6.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री
6.10 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

इससे पूर्व की इकाई में आप हिन्दी साहित्य के आदिकाल के उद्भव और विकास के संबंध अध्ययन कर चुके हैं। जिससे आप यह भी जान चुके हैं कि हिन्दी साहित्य का व्यवस्थित इतिहास लिखते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने युगीन परिस्थितियों के संदर्भ में साहित्य के विकास क्रम की व्याख्या करते हुए साहित्येतिहास का काल विभाजन करते हुए प्रारंभिक काल का नाम वीरगाथा काल (आदिकाल) किया था और जनता की चित्तवृत्तियों के साथ जोड़कर नामकरण का प्रयास करते हुए आधार ग्रंथों या सामग्री के आधार पर अपना संशय भी व्यक्त किया था। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने शुक्ल जी के संशय का निराकरण करते हुए उनके दृष्टिकोण के समानांतर अपना नवीन दृष्टिकोण स्थापित कर युगीन परिस्थितियों के सम्यक मूल्यांकन के पश्चात हिन्दी साहित्य के प्रथम काल को आदिकाल के नाम से अभिहित किया।

प्रस्तुत इकाई में आप हिन्दी साहित्य के प्रथम कालखण्ड आदिकाल के सम्बन्ध में विभिन्न अधिकारी विद्वानों द्वारा प्रस्तुत निष्कर्षों के आधार पर किये गए विश्लेषणों का सार पढ़ेंगे . इस इकाई में आप आदिकाल के उद्भव एवं विकास , उस कालखंड की सम्पूर्ण प्रक्रिया का विस्तार से अध्ययन करेंगे

6.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप बता सकेंगे कि -

- आदिकाल का सामान्य अर्थ क्या है ?
- आदिकाल का स्वरूप क्या है ?
- आदिकाल की विभिन्न परिस्थितियाँ किस प्रकार आदिकाल का स्वरूप निर्माण करने में सहयोगी रही हैं।
- हिन्दी साहित्य के आदिकाल की प्रमुख प्रवृतियाँ एवं प्रक्रिया क्या रही हैं ?

6.3 आदिकाल : अर्थ एवं स्वरूप

अब तक के अध्ययन के पश्चात आप भली-भांति समझ चुके हैं कि हिन्दी साहित्य के आदिकाल का अर्थ साहित्य का प्रारंभिक काल ही है जिसे विभिन्न विद्वानों के मत-मतांतर के बाद आदिकाल के रूप में स्वीकार किया जा चुका है, यथा –

1.	जार्ज ग्रियर्सन	-	चारणकाल
2.	मिश्रबंधु	-	आरंभिक काल

3.	हजारी प्रसाद द्विवेदी	-	आदिकाल
4.	राहुल सांकृत्यायन	-	सिद्ध सांमत युग
5.	महावरी प्रसाद द्विवेदी	-	बीज-वपन काल
6.	विश्वनाथ प्रसाद मिश्र	-	वीर काल
7.	रामकुमार वर्मा	-	संधिकाल-चारण काल
8.	गणपति चंद्र गुप्त	-	संक्रमण काल
9.	हरिश्चन्द्र वर्मा	-	प्रारंभिक काल

आज हिन्दी साहित्य का काल-विभाजन स्वमान्य हो चुका है। अत: आप भी एक बार पुन: दुहरा लीजिए –

(क) आदिकाल	(दसवीं-चौदवीं शती)
(ख) पूर्वमध्यकाल	(चौदहवीं- सत्रहवीं शती)
(ग) उत्तर मध्य काल	(सत्रहवीं-उन्नीसवीं शती)
(घ) आधुनिक काल	(उन्नीसवीं – वर्तमान काल तक)

हिन्दी साहित्य के आदिकाल को यदि आप स्मरण कर पायें तो स्वयं यह अनुभव करेंगे कि उस समय राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अस्थिरता थी। आदिकाल की राजनीतिक अस्थिरता का सीधा प्रतिफलन वीरगाथाएं ही थी, क्योंकि भारतीय राजा आपस में लड़ते रहते थे विदेशी आक्रमण हो रहे थे या भारतीय राजाओं द्वारा अपने प्रतिपक्षी को पदावनत कराने के लिए भारत से वाह्य शासकों को आमंत्रण भी दिए जाते थे। देखा जाए तो भारतीय राजाओं का अधिकांश समय युद्ध क्षेत्र में ही बीतता था।

यही नहीं, आप यह भी पायेंगे कि बड़े भारतीय राज्यों को अपनी वरिष्ठता सिद्ध करने तथा प्रतिस्पर्धात्मक रूप में अपनी प्रशंसा और प्रशस्ति के विस्तार हेतु शायद यही एकमात्र उपाय रह गया था। उस आकांक्षा को उनके दरबारी कवियों ने भली प्रकार पहचाना था और देशी राजा दरबार में अनेकानेक अवसरों पर अपने आश्रय प्राप्त कवियों से विरुदावली (प्रशस्ति गायन) सुनने का सुख पाते थे। युद्धारंभ में उन्हीं आश्रय प्राप्त राजाओं की अपने प्राण देकर अपने आश्रयदाता के प्राणों की रक्षा के लिए प्रेरणा भी देते थे। पृथ्वीराज रासो में संयम्राव द्वारा घायल पृथ्वीराज की प्राणरक्षार्थ हेतु अपने घायल अंगों को काट-काटकर गिद्धों को खिलाने का उल्लेख चंद बरदाई द्वारा स्वामिभक्ति के व्यापक प्रभाव का संकेत करता है।

दरबारी कवि अथवा कवियों द्वारा जहां अपने आश्रयदाता राजाओं की वीरता और शौर्य का अतिश्योक्ति पूर्ण वर्णन भी व्यापक प्रवृत्ति थी वही वीर रस के संचरण के समानांतर श्रृंगार रस का

व्यापक काव्यशास्त्रीय निरूपण करने और उस स्थिति में अपने-अपने आश्रयदाता के श्रृंगारिक उत्प्रेरण का चित्रण ही उन कवियों का एकमात्र उद्देश्य था। लेकिन इनमें कई ऐसी गाथाएं भी है, जहां आश्रय प्राप्त दरबारी कवि केवल लेखनी का ही कमाल नहीं दिखाते थे, युद्ध क्षेत्र में वे तलवार का हस्त कौशल भी दिखाने में पीछे नहीं थे।

आपको यह भी जान लेना क्यों उचित होगा कि इस काल को वीर गाथा काल का नाम देना क्यों अनुपयुक्त था ? पिछली इकाई के अध्ययन में आप यह जान चुके हैं कि इस काल विशेष में वीसलदेवरास और विजयपालरासो जैसे काव्य भी उपलब्ध होते हैं जिनका विषय वीर गाथा परक नहीं है, अपितु प्रेमगाथा काव्य परक है, विजयपाल रासो अभी तक अपूर्ण है तथा वीसलदेवरास विरहकाव्य है। जिसे अब्दुल रहमान कृत **सन्देश रासक** की परम्परा की प्रतिनिधि कृति कहा जा सकता है। पिछली इकाई में आप यह भी पढ़ चुके हैं कि आदिकाल की आधार सामग्री में जहाँ अपभ्रंश भाषा की रचनाएं भी सम्मिलित हैं, वही विद्यापति पदावली की भाषा मैथिली है और अमीर खुसरो की भाषा खड़ी बोली हिन्दी का प्रारंभिक रूप तो लिए ही है, उसके साथ उक्त कालखण्ड में **ढोला मारु रा दूहा** जैसा लोककाव्य भी रचा गया था। यद्यपि उसे आदिकाल की आधार सामग्री के रूप में अग्राहय मान लिया गया था। आप पिछली इकाई में यह भी भली प्रकार जान चुके हैं कि उल्लिखित अपभ्रंश की कतिपय महत्वपूर्ण काव्य रचनाओं को भी इस काल के नाम निर्धारण के निमित्त ग्रहण किया जाना एक महत्त्वपूर्ण कदम है । जिनमें अपभ्रंश भाषा में रचित जैन संतों द्वारा चरित काव्य जसहर चरिउ , करकंडु चरिउ , णायकुमार चरित (नागकुमार चरित), पउम चरिउ (पद्म चरित), पाहुडा दोहा आदि प्रमुख हैं। इसी प्रकार आचार्य शुक्ल द्वारा धार्मिक अथवा संप्रदायगत रचनाएं कहकर नाथो-सिद्धों और बौद्ध सम्प्रदायों की कृतियाँ भी स्वीकार नहीं की थी। कालान्तर में साहित्येतिहासकारों ने इन रचनाओं को तत्कालीन समाज की चित्तवृत्तियों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति माना है।

6.4 आदिकालीन परिस्थितियाँ

आदिकालीन परिस्थितियों की चर्चा करने से पूर्व आपको आदिकाल के स्वरूप को समझने का संकेत ऊपर किया जा चुका है। जिससे आप भलीभॉति जान चुके हैं कि आदिकालीन साहित्य सर्जना के लिए किस प्रकार की परिस्थितियाँ थीं जो तत्कालीन दरबारी कवियों को काव्य रचना के लिए बाध्य करती थी। आपके समक्ष इन परिस्थितियों की निमांकित चार वर्गों में रखा जा रहा है।

6.4.1 राजनीतिक परिस्थितियाँ

हिन्दी साहित्य का यह प्रथम काल खण्ड तत्कालीन राजनीतिक अस्थिरता एवं अव्यवस्था, गृह-कलह और पराजय और आंतरिक हताशा का कालखण्ड था। दूसरी ओर विदेशी आक्रमण राज्यों की स्वतंत्रता पर हावी हो रहे थे। सम्राट हर्ष वर्धन (सन् 606-643) के निधन के बाद उत्तर भारत में

केन्द्रीय शक्ति का क्षय और राजसत्ता अस्थिर हो गई थी, दक्षिण भारत में राष्ट्रकूटों का साम्राज्य स्थापित हो चुका था। मुहम्मद बिन कासिम के सिंध पर आक्रमण पर वहां का राजा दाहिर की पराजय का कारण वहां के जाट और ब्राहमण राजाओं के सहयोग का अभाव रहा है। आप इतिहास पर दृष्टि डालें तो इस कालखण्ड में अनेक छोटे-छाटे राज वंश-गुर्जर, तोमर, राठौर, चौहान, चालुक्य, चंदेल, परमार, गाहड़वार आदि सत्ता प्राप्ति के लिए पारस्परिक युद्ध, गृह कलह और विघटन के कारण सामन्तवाद को प्रोत्साहित कर रहे थे तथा देश एकतंत्र-व्यवस्था में न रहकर अनेक राज्यों में बट गया था। राष्ट्रीयता या देशभक्ति की भावना सर्वथा लुप्त थी। राज-भक्ति, आश्रयदाता का शौर्य-गान एवं प्रशंसा तथा अनुचित कार्यों के समर्थन का प्रचलन बढ़ चला था।

सन् 800 से 1020 ई० तक के पाल शासकों ने गजनवी के तुर्कों का सामाना केवल व्यक्तिगत वीरता, शौर्य, आत्मबल और देश-हित में प्राणोत्सर्ग करने के लिए ही रहा, सामूहिक रूप से गजनी के आक्रमणों से लोहा लेना नहीं। आपसी फूट, कलह तथा विलासिता के कारण भारतीय शक्ति ध्वस्त होती रही और इस्लाम का आगमन, उनकी बढ़ती सत्ता-भूख के सामने दोषपूर्ण राजनीति अपनी चेतना खो चुकी थी। दसवीं से 1026 की अवधि में महमूद गजनवी ने सत्रह बार भारत पर आक्रमण क्रिया और अनेक भारतीय शक्तिशाली राजपूतों को अपने बीच कर लिया। मोहम्मद गौरी की मृत्यु के बाद कुतुबुद्दीन ऐबक ने भारत के पूरे हिन्दी भाषी क्षेत्र पर राज्य स्थापित किया।

अधिकांश आदिकालीन साहित्य में हिंदु शासकों के या तो पारस्परिक युद्धों का या फिर तुर्क-अफगानों से किए गए युद्धों अव्यवस्थाओं, लूट-मार तथा भारतीय राजतंत्र के पराजय के वातावरण में दरबारी कवियों द्वारा अपने आश्रयदाताओं के यश-प्रशस्त शौर्यका गान उपलब्ध होता है लेकिन उससे अधिक पराजित हिन्दुओं को जैन एवं बौद्ध धर्म से संबंधित साहित्य के माध्यम से चित्रित किया गया है। चंद बरदाई, विद्यापति, अमीर खुसरो, स्वयंभू, पुष्पदंत, हरिभ्रदसूरि, रामसिंह के अतिरिक्त कण्हपा सरहपा ने तत्कालीन परिवेश को शब्द दिए हैं।

6.4.2 धार्मिक एवं आर्थिक परिस्थितियाँ

हिन्दी साहित्य के आदिकाल धार्मिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से भी अस्थिर, एक दूसरे को प्रभावित करने तथा परिस्परिक आदान-प्रदान का था। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में आठवीं से लेकर बारहवीं शती तक भारतीय संस्कृति के मूलभूत सिद्धान्त लगभग अपरिवर्तनीय हैं, किन्तु उनका बाह्य आकार परिवर्तित होता हुआ प्रतीत होता है। आपके समक्ष धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों का पृथक रूप से उल्लेख अधिक उपयुक्त है।

धार्मिक परिस्थितियां :- ईसा की सातवीं शती यानी हर्षवर्धन के समय में ब्राहमण और बौद्ध धर्मों में समान आदर भाव था। हर्ष स्वयं बौद्ध मतावलंबी थे और बौद्ध धर्म का प्रचार-प्रसार काफी मात्रा में था फिर भी उदार एवं धार्मिक सहिष्णुता के परिणाम स्वरूप विभिन्न धर्मों में पारस्परिक सौहार्द्र था

तथा समन्वय की प्रवृत्ति की झलक भी मिलती थी। हर्षवर्धन की मृत्यु के उपरांत केन्द्रीय सत्ता के अभाव से देश खण्ड राज्यों में विभाजन हुआ तो धार्मिक अराजकता के विस्तार के साथ वैदिक विधि-विधान और कर्मकाण्ड के चलते ब्राहमण और बौद्ध धर्म संप्रदाय अपनी पवित्रता खो चुके थे। आम जन सिद्धियों की दिग्भ्रांतता का शिकार हो रहा था। हीनयान-वज्रयान, महायान, सहजयान में बिखरा बौद्ध धर्म तंद्ध-मंत्र, हठयोग जैसे पंचमकारों (मांस, मैथुन, मत्स्य, मद्य तथा मुद्रा) को भी विशेष स्थान प्राप्त होता जा रहा था। इनके बिना साधना अधूरी मानी जाती थी। वास्तव में बौद्धमत वाममार्गी हो चुका था। दूसरी ओर धर्म-नियम संयम और हठयोग द्वारा साधना के कठिन मार्ग से बढ़ने वाले नाथसिद्ध के रूप में जाने गए। डॉ० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय ने लिखा है- ''इस काल के हिन्दी प्रदेश और उसकी सीमाओं के आस-पास जैन धर्म, बौद्ध धर्म के वज्रयानी रूप, तांत्रिक मत, रसेश्वर-साधना, उमा-महेश्वर-योग साधना, सोम सिद्धांत, वामाचार, सिद्ध और नाथ-पंथ शैवमत, वैष्णवमत, शाक्त मत आदि विभिन्न मत प्रचलित थे। जैन-वैष्णव, शैव , शक्ति आदि संप्रदायों की प्रतिद्वन्द्विता राष्ट्रीय शक्ति का ह्रास कर रही थी। भीतरी विद्वेष से जर्जर देश में इतिहास से टकराने वाला संकल्प न रह गय। दुर्भाग्यवश ये धर्म मनुष्य की सामाजिक और राजनीतिक मुक्ति के साधन बनने के स्थान पर विच्छेद-भाव उत्पन्न करने के साधन बने।

काल में वैदिक,बौद्ध एवं जैन धर्मसाथ-साथ प्रचलित थे और वैदिक धर्मका कभी-कभी बौद्ध या जैन धर्म से संघर्ष भी हो जाता था, पर धीरे-धीरे वैदिक या ब्रहमण धर्म बल पकड़ता गया तथा बौद्ध एवं जैन धर्म कमजोर पड़ते गए। इसका प्रमुख कारण यह है कि युद्धों के उस काल में अहिंसा पर आधारित बौद्ध-जैन धर्म सीमाओं की मनोवृत्ति के अनुकूल नहीं हो सकते थे, इसलिए शैव मत का प्रभाव भी बढ़ता गया। निस्संदेह इस काल खंड में अनेक मत-मतांतरों से परिपूर्ण प्रतिद्वन्द्वी धार्मिकदल, इस्लाम की बढ़ती शक्ति, ब्राहमणविरोध , वैदिक और बौद्ध धर्मो का अत: संघर्ष तथा सांप्रदायिक विद्वेष कई रूपों में देखने को मिलता है।

सांस्कृतिक परिस्थितियाँ – सम्राट हर्षवर्धन के समय तक भारत सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय दृष्टि से सम्पन्न और संगठित था। उस समय की सांस्कृतिक उत्वर्ष को संगीत, चित्र , मूर्ति तथा स्थापत्य आदि कलाओं के रूप में आंका जा सकता था। जातीय एवं राष्ट्रीय गौरव का यह भाव सर्वत्र देखा जा सकता था। हिन्दी साहित्य यह काल दो संस्कृतियों के संक्रमण एवं ह्रास-विकास का काल था जिसके एक छोर पर भारतीय संस्कृति का उत्कर्ष था तो दूसरे छोर पर आदिकाल के समापन काल में मुस्लिम संस्कृति की संस्थापना थी। तभी तो कहा गया है कि – भारत में मुस्लिम संस्कृति के समय में दीर्घ काल से चली आती हुई समन्वय की एक व्यापक प्रक्रिया पूर्णता को पहुँच रही थी। (हिंदी साहित्य का इतिहास-सं. नगेन्द्र,)

ईसा की ग्यारवीं शती में इस्लामिक संस्कृति के प्रवेश से भारत की दोनों संस्कृतियों (हिंदू-मुस्लिम) का एक दूसरे से प्रभावित होना सहज-स्वाभाविक था। प्रारंभ में ये दोनों संस्कृतियाँ परस्पर प्रतिद्वन्द्वी के रूप में आमने-सामने थी, पर सत्ता में बढ़ते मस्लिम प्रभाव के कारण मुस्लिम संस्कृति

एवं कला का प्रभाव भारतीय जन-जीवन पर पड़ने लगा था। इस्लाम मूर्ति-विरोध सर्वविदित है। लेकिन इसमें दो मत नहीं है कि दोनों संस्कृतियाँ परस्पर किसी न किसी रूप में एक समान प्रभाव ग्रहण करती है।

6.4.3 सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियाँ

हिन्दी साहित्य के आदिकाल से समाज विभिन्न वर्णों तथा जातियों में विभाजित तथा असंगठित समाज-व्यवस्था का शिकार था। भारतीय राजसत्ता समाज के हित को भूलकर आपसी फूट और झगड़ों में डूबी थी । यद्यपि वीसल देव व राणा सांगा जैसे राष्ट्रीय भावना युक्त क्षत्रिय भी इस समाज का अंग थे, पर अधिसंख्य लोगों में इस भावना का अभाव था। आप इसे दो स्तर पर भली प्रकार समझ सकते हैं –

सामाजिक परिस्थितियाँ - आदिकाल में समाजिक रीतिरिवाजों और विधि विधान की कट्टरता का प्रचलन पहले से ही विद्यमान था तथा जनता शासनऔर धर्म दोनों ही ओर से निराश्रित और निरतंर युद्धों के झेलने के कारण बुरी तरह त्रस्त थी। ईश्वर के प्रति अनास्था का भाव विकसित हो रहा था। समाज का उच्चवर्ण भोग विलासिता में लीन था और निर्धन या निम्न वर्ण शोषण का शिकार था। नारी भोग की वस्तु रह गई थी। सती प्रथा तथा अंधविश्वासों के अभिशाप से पूरा समाज ग्रस्त था। साधु-सन्यासी शाप और वरदानों के बीच जनसामान्य पर आतंक जमाए थे। आदिकालीन कवियों ने अपने परिवेश और वातावरण से ही अपनी काव्य रचनाओं की सामग्री जुटायी है।

सामाजिक संकीर्णता अपने अनेक प्रतिबन्धों के रूप में आम व्यक्ति को सता रही थी। तभी लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय ने लिखा है कि ,इस काल के समाज में विभिन्न वर्गों के विविध प्रकार के उत्सव और वस्त्राभूषणों के प्रति प्रेम प्रचलित था। अरिवेट, मज्ज युद्ध, घुड़सवारी, द्यूत-क्रीड़ा, संगीत-नृत्य आदि मनोरंजन के साधन थे और कवियों का विशेष आदर था....शक्ति और शैवों को छोड़कर शेष लोग खान-पान में सात्त्विकता बरतते थे। (हिन्दी साहित्य का इतिहास,)

आर्थिक परिस्थितियाँ – आदिकाल के इस काल खण्ड में समाज अपनी आर्थिक परिस्थितियों से भी जूझ रहा था, आर्थिक परिस्थितियों की अस्थिरता का मूल कारण तद्युगीन युद्ध ही कहे जा सकते हैं। विदेशी आक्रांताओं का मुख्य उद्देश्य भारतीय संपत्ति को क्षति पहुँचाना या फिर धन, स्वर्ण आदि लूट कर अपने देश ले जाना था. यही नहीं, समय-समय पर यवन आक्रमणकारी देश में प्रविष्ट होकर हमारे खेतों में खड़ी फसलों को रौंद कर, जलाकर नष्ट कर देते थे। नगरों, गांवों , मंदिरों तथा संग्रहांलयों को तोड़कर लूट कर के हमारी ज्ञान संपदा भी नष्ट करते थे। लगातार युद्धों एवं आक्रमणों का दुष्परिणाम अर्थव्यवस्था तथा सामाजिक व्यवस्था पर व्यापक रूप से पड़ा । जनता निर्धनता और लूटमार से आक्रांत एवं त्रस्त हो चुकी थी और उसको जीवन यापन के साधन जुटाना भी दुर्लभ हो गया था। साहूकारों और सामंत आम निर्धन जनता को ऋण ग्रस्त कर बेहाल किए हुए थे। सत्ता जनता के प्रति गहरी निरपेक्ष थी वह उनके कल्याण और आर्थिक उद्धार करने के स्थान पर उनका

शोषण ही कर रही थी। यह स्पष्ट है कि यह काल खण्ड सामाजिक एवं आर्थिक अराजकता का ही था। जमींदार, सेना नायक, शासक जागरूक थे. कर्तव्य-पालन के प्रति उदास थे। अत: आर्थिक अनुदारता के सत्ता पक्ष के इस स्वरूप से जनता निर्धन, आश्रयहीन एवं कमजोरअर्थ साधनों के कारण उच्च वर्गीय शोषण का भी शिकार थी।

6.4.4 साहित्यिक परिस्थितियाँ

त्रिभाषात्मक साहित्यिक सर्जना - आदिकालीन हिन्दी साहित्य का विवेचन करते हुए आपके सामने यह प्रस्तुत किया जा चुका है कि तत्कालीन समय में परंपरागत संस्कृत साहित्य धारा में प्राकृत और अपभ्रंश की साहित्य सर्जना मूलकधारणा और जुड़ गई थी। इसीलिए आदिकाल की साहित्यिक परिस्थिति, साहित्य एवं भाषा के स्वरूप तथा स्थिति विशेष के अध्ययन की अपेक्षा रखती है। आदिकाल की राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक परिस्थितियों की अस्थिरता और अराजकताका अध्ययन अभी तक आप कर ही चुके हैं। अब आप आदिकालीन साहित्य एवं भाषा की परिस्थितियाँ कैसी थीं यह भी जान लीजिए। नवीं से ग्यारहवी शती ईस्वी तक कन्नौज और कश्मीर संस्कृत साहित्य के मुख्य केन्द्र थे और इस काल खण्ड में एक ओर संस्कृत साहित्य धारा के आनन्दवर्धन, अमिनव गुप्त, कुन्तक, क्षेमेन्द्र, भोजदेव, मम्मट, राजशेखर तथा विश्वनाथ जैसे काव्यशास्त्री तो दूसरी ओर शंकर, कुमारिल भट्ट, एवं रामानुज जैसे दर्शनिकों और भवभूति , श्री हर्ष ,जयदेव जैसे साहित्यकारों का सर्जनात्मक सहयोग था ।

इसी काल खण्ड में प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं की साहित्य सर्जना भी हो रही थी। स्वयंभू, पुष्पदंत तथा धनपाल जैसे जैन कवियों ने अपनी प्राकृत एवं अपभ्रंश तथा पुरानी हिन्दी की मिश्रित रचनाएं भी प्रस्तुत की थीं। सरहपा, शबरपा, कणहपा, गोरखनाथ, गोपीचंद जैसे नाथ सिद्धों ने अपभ्रंश तथा लोकभाषा हिंदी में अपनी रचनाएं प्रस्तुत की। राजशेखर की कर्पूरमंजरी, अमरूक का अमरूशतक तथा हाल की आर्यासप्तशती, अपभ्रंश की उत्तम कृतियों इसी कालखण्ड की देन हैं। वास्तव में यह काल मीमांसा-साहित्य सर्जना की प्रवृत्तियों का रहा हैं। आप ये जान लें कि संस्कृत भाषी साहित्य तत्कालीन राज प्रवृत्ति सूचक है तो प्राकृत एवं अपभ्रंश साहित्य धर्म ग्रंथ मूलक भाषा की प्रवृत्ति का परिचालक है और हिंदी जन मानस की प्रवृत्ति की रचनात्मक वृत्ति का प्रतिनिधित्व करती है।

आदिकालीन साहित्य का विशिष्ट स्वरूप –सामान्यत: इसमें अतिश्योक्ति ही है कि आदिकाल वीरगाथात्मक काव्य में आश्रयदाताओं के शौर्य गान, प्रशस्ति प्रकाशन और अतिरंजना पूर्ण अमिसिकतताका काल है। भावगत इकाई में यह अध्ययन कर चुके हैं कि इसी भ्रम के कारण इस काल खण्ड को वीरगाथा काल कहने के लिए आचार्य शुक्ल को दुविधा में डाला था। अब आप अध्ययन कर यह अवश्य ही अनुभव करेंगे कि दसवीं से चौदहवीं शताब्दी ईस्वीं का यह काल खण्ड साहित्य और भाषा की दृष्टि से विकास का काल था। युद्धों की निरंतरता और वैदेशिक आक्रांताओं

द्वारा इस देश को तहस-नहस करने के बीच भी आश्रयदाताओं की साहित्यिक अभिरूचि की सशक्तता के परिणाम स्वरूप इस काल में निम्न प्रकार से भाषा एवं साहित्य के स्वरुप का अववाहन किया जा सकता है-

आदिकालीन भाषा एवं साहित्य

क .संस्कृत साहित्य 1 . वैदिक संस्कृत साहित्य 2 .लौकिक संस्कृत साहित्य

ख . प्राकृत साहित्य 1 . संस्कृतेतर साहित्य 2. अपभ्रंश साहित्य 3 . देशभाषा साहित्य

ग . धर्म संप्रदाय गत साहित्य - स्फुट साहित्य **,** बौद्ध साहित्य , जैन साहित्य

घ . देश भाषा साहित्य

विषम परिस्थितियों में भी आदिकाल में वीरगाथा, भक्ति एवं श्रंगार के साथ धार्मिक, लौकिक और नीतिपरक आध्यात्मिक रचनाएं लिखी गई हैं। संकेत रूप में आप पुन: जान लीजिए कि इस युग और परिवेश में चंद बरदाई,विद्यापति, अमीर खुसरों, स्वयंभू, पुष्पदंत, रामसिंह, सरहपा, कण्हपा, गोरखनाथ, अब्दुर्रहमान, नरपति नाल्ह तथा जगनिक आदि ने राष्ट्रीय भावना से दूर रहकर आश्रयदाताओं के प्रशस्ति-गायन, शौर्य-वर्णन की अतिशयता, ऐतिहासिक विसंगतियों के बीच विकसित काव्यधारा में भक्ति, नीति और प्रकृति का चित्रण भी किया गया है। उक्त साहित्य सर्जना के आधार पर आचार्य शुक्ल का यह कथन अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है – ''आदि से अंत तक इन्हीं चित्तवृत्तियों की परम्परा को परखते हुए साहित्य परंपरा के साथ उनका सामंजस्य दिखाना ही साहित्य का इतिहास कहलाता है। जनता की चित्तवृत्ति बहुत कुछ राजनीतिक, सामाजिक, सांप्रदायिक तथा धार्मिक परिस्थिति के अनुसार होती है। अत: कारण-स्वरूप इन परिस्थितियों का किंचित दिग्दर्शन भी साथ ही साथ आवश्यक होता है (रामचंद्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास, भूमिका,)

बोध प्रश्न 1 :-

1. आदिकाल की राजनीतिक परिस्थितियाँ क्या थी ?
2. आदिकालीन धार्मिकएवं सांस्कृतिक परिस्थितियों की समीक्षा कीजिए।
3. आदिकाल की साहित्यिक परिस्थितियों का विवेचन कीजिए।
4. आदिकालीन सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियाँ कैसी है ?

6.5 आदिकाल : प्रमुख प्रकृतियाँ

आप अभी आदिकालीन परिस्थितियों का अध्ययन कर चुके हैं और निश्चित ही आपके मन में यह प्रश्न उठ सकता है कि इन परिस्थितियों में किस प्रकार के साहित्य की रचना हुई। अत: इकाई के इस अंश में आपको इस काल की प्रमुख प्रवृत्तियों के विषय में विस्तृत जानकारी देंगे। आपकी सुविधा के लिए प्रमुख आदिकालीन प्रवृत्तियों का वर्गीकरण तीन स्तर पर किया जा रहा है- धर्म संबंधी साहित्य, चारण काव्य और लौकिक साहित्य। अब क्रमश: हम इन्हीं बिन्दुओं के आधार पर आदिकाल की प्रमुख प्रवृत्तियों का उल्लेख करेंगे -

6.5.1 धर्म संबंधी साहित्य

धर्म संबंधी साहित्य के अंतर्गत उस साहित्य का उल्लेख किया जा रहा है जो किसी मत विशेष के प्रचार-प्रसार करने हेतु लिखा गया जैसे – सिद्ध संप्रदाय, नाथ संप्रदाय, जैन संप्रदाय आदि। यद्यपि आचार्य शुक्ल ने इन्हें साहित्यिक रचनाओं के रूप में स्वीकार नहीं किया था। लेकिन आप जान सकते हैं कि ये धर्मसंबंधी रचनाएं केवल धर्म प्रचार मात्र नहीं थी, अपितु इन्हें उत्तम काव्य की कोटि में रखा जा सकता है । इस संबंध में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का कहना है कि , इधर जैन, अपभ्रंश चरित काव्यों की जो विपुल सामग्री उपलब्ध हुई है, वह सिर्फ धार्मिक संप्रदाय के मुहर लगने मात्र से अलग कर दी जाने योग्य नहीं है, अपभ्रंश की कई रचनाएं, जो मूलत: जैन धर्म भावना से प्रेरित होकर लिखी गई हैं, निस्संदेह उत्तम काव्य हैं। यह बात बौद्ध सिद्धों की कुछ रचनाओं के बारे में भी कहीं जा सकती हैं। (हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली, भाग 1)

6.5.2 सिद्ध काव्य

सिद्ध संप्रदाय को बौद्ध धर्म की परंपरा का हिन्दू धर्म से प्रभावित एवं धार्मिक आन्दोलन माना जाता है। तांत्रिक क्रियाओं में आस्था तथा मंत्र द्वारा सिद्धि चाहने के कारण इन्हें सिद्ध कहा जाने लगा। इन सिद्धों की संख्या 84 मानी गई है। राहुल सांकृत्यायन ने तथा आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इन सिद्धों के नामों का उल्लेख किया है, जिनमें सरहया, शबरपा , कण्हपा, लुइपा, डोम्मिपा, कुक्कुरिपा आदि प्रमुख हैं। केवल चौदह सिद्धों की रचनाएं ही अभी तक उपलब्ध हैं ।

सिद्धों द्वारा जनभाषा में लिखित साहित्य को सिद्ध साहित्य कहा जाता है। यह साहित्य वस्तुत: बौद्धधर्म के वज्रयान का प्रचार करने हेतु रचा गया। अनुमानत: इस साहित्य का रचनाकाल सातवीं से तेरहवीं शती के मध्य है। इन सिद्ध कवियों की रचनाएं दोहाकोश और चर्यापद के रूप में उपलब्ध होती है सिद्ध साहित्य में स्वाभाविक सुख-भोगों की स्वीकृति और गृहस्थ जीवन पर बल दिया गया है तथा पाखण्ड एवं बाह्य अनुष्ठानों का विरोध तथा स्व-शरीर में परमात्मा का निवास माना है। यही नहीं गुरू का विशेष महत्व प्रतिपादित किया गया है। आचार्य द्विवेदी का कथन है कि

इन रचनाओं में प्रधान रूप से नैराश्य भावना, काया योग, सहज शून्य की साधना और भिन्न प्रकार की समाधि आदि अन्य अवस्थाओं का वर्णन है।

यद्यपि सिद्ध सम्प्रदाय का अभीष्ट काव्य लेखन नहीं था। वो तो केवल अपने विचारों एवं सिद्धांतों की अभिव्यक्ति के लिए जनभाषा में साहित्य रचते थे और उनकी भाषा शैली में जो अक्खड़पन और प्रतीकात्मकता है उसकी प्रभाव परवर्ती हिंदी साहित्य पर पड़ा है। आप देखेंगे कि वे सिद्ध कवि अपनी बात सीधे ढंग से न कहकर तंत्र-मंत्र के अंतर्गत प्रयोग किए जाने वाले विशिष्ट शब्दों के माध्यम से ही प्रकट करते थे। राहुल सांकृत्यायन ने परवर्ती हिंदी कवियों पर उनके प्रभाव का उल्लेख करते हुए कहा है कि ''यही कवि हिंदी काव्य धारा के प्रथम सृष्टा थे। नये-नये छन्दों की सृष्टि करना इनका ही कार्य था उन्होंने दोहा, सोरणा, चौपाई, छप्पय आदि कई छन्दों की सृष्टि की जिन्हें हिंदी कवियों ने बराबर अपनाया है। (हिंदी काव्य धारा, पृ०-36)

सरहपा या राहुलभ्रद का समय 769 ई० के लगभग माना जाता है। इनके ग्रंथों की संख्या 32 है। जिनमें कायावाश, दोहाकाश, सरहपाद गीतिका को प्रमुख माना जाता है। वे कहते हैं –

पडित सअल सत्य वक्टवाण्अ।

देहहिं बुद्ध बसन्त या जाणअ।।

अर्थात पडित सभी शास्त्रों का व्याख्यान करते हैं, किन्तु देह बसने वाले बुद्ध (ब्रहम) को नहीं जानते। सरहपा के अतिरिक्त शबरपा ,लुइप , कण्इपा आदि हैं। जिनके ग्रंथों की अनुमानित: संख्या 16 है । कण्हपा की रचनाओं की संख्या 74 मानी जाती है, पर कण्हपा गीतिका तथा दोहाकांश प्रमुख है। आप जान पायेंगे कि इन ग्रंथों में दर्शन तथा तम-विद्या है। उन्होंने मनुष्य के जीवन का मूल उद्देश्य सहजानंद की प्राप्ति को माना है,जो मात्र मोह के त्यागने पर शरीर के अंदर ही प्राप्य है जिसका मार्गदर्शक गुरू है। यही साधना मार्ग परवर्ती कवियों के लिए भी मार्ग दर्शक है।

6.5.3 नाथ काव्य

नाथ संप्रदाय को सिद्धों की परंपरा का विकसित रूप माना जाता है। नाथ संप्रदाय में नाथ शब्द का अर्थ मुक्ति देनेवाला है। यह मुक्ति सांसारिक आकर्षण एवं भाग विलास से होती है तथा निवृत्ति मार्ग का दर्शक गुरू होता है। दीक्षा के उपरांत गुरू वैराग्य की शिक्षा देकर इन्द्रिय निग्रह, कुण्डलिनी जागरण, प्राण-साधना, नारी विरति के साथ हठयोग की प्रक्रिया अपनाता है। इनके साहित्य में प्रयुक्त प्रतीक सूर्य, चंद्र, गगन, कमल आदि है जो सूर्य 'ह' और चन्द्र 'ठ' के प्रतीक है और इनका मिलन हठ योग कहा गया है। आचार्य शुक्ल ने इन ग्रंथों की भाषा देशभाषा मिश्रित अपभ्रंश या पुरानी हिंदी मानी है।

नाथ योगियों की संख्या नौ मानी गई है – नागार्जुन, जडभरत, हरिशचन्द्र, सत्यनाथ, भीमनाथ, गोरखनाथ, चर्पटनाथ, जलंधरनाथ और मलयार्जुन है। इस संप्रदाय का आचार्य गोरखनाथ

को माना जाता है तथा मत्स्येन्द्रनाथ उनके गुरू थे। गोरखनाथ के ग्रंथों की संख्या चालीस मानी जाती है, परन्तु हजारी प्रसाद द्विवेदी तथा पीताम्बरदत्त बडथ्वाल आदि ने प्रमुखत: चार ग्रंथ ही माने हैं – सदी, पद, प्राण-संकल्पी, शिष्यादर्शन । इनमें संयम, साधना तथा ब्रहमचर्य पर जोर दिया गया है तथा गुरू की महत्ता का बखान किया गया है। गोरख नाथ कहते हैं –

जाणि के अजाणि होय बात तूं ले पशाणि।

चेलेहोइआं लाभ होइगा गुद होइआं हागि।।

अर्थात् तू जानबूझकर अनजान मत बन और यह बात पहचान ले या जान ले कि शिष्य बनने में लाभ ही लाभ है और गुरू बनने में हानि है।

नाथ योगियों ने आचरण-शुद्धि और चरित क्षमता पर बहुत जोर दिया है। उनके योग में संयम और सदाचार का बड़ा महत्व था। कबीर तथा अन्य भक्ति कालीन संत कवियों के साहित्य में प्राप्त कुंडलिनी जागृत करने की क्रिया का आधार भी नाथ योगियों का हठयोग है। आचार्य द्विवेदी कहते हैं कि नाथपंथ ने ही अनजाने परवर्ती संतों के लिए श्रृद्धाचारण प्रधान पृष्ठभूमि तैयार कर दी थी। (हिंदी साहित्य की भूमिका)

6.5.4 जैन काव्य

जैन का अर्थ होता है सांसारिक विषय वासनाओं पर विजय प्राप्त करने वाला। यह शब्द 'जिन' से बना है यानी विजय पाने वाला। जो सांसारिक आकर्षण पर प्राप्त की जाती है। बौद्ध संप्रदाय से पूर्व ही जैन संप्रदाय का अम्युदय हो चुका था और उसके प्रवर्त्तक भी महावीर स्वामी थे जिनका अविर्भाव भी महात्मा बुद्ध से पहले आया था। जैन संप्रदाय में दया, करूणा, त्याग तथा अहिंसा, इंद्रिया निग्रह, सहिष्णुता, व्रतोपवास आदि को महत्व दिया गया है। जैन कवियों एवं मुनियों ने अपने धर्म-प्रचार के लिए लोकभाषा ही अपनाई जो अपभ्रंश से प्रभावित हिंदी है। इनकी अधिसंख्य रचनाएँ धार्मिक हैं जिनमें जैन संप्रदाय की नीतियों, अध्यात्म और आगमों का विवेचन है और कुछ चरितकाव्य हैं। इनकी कृतियाँ रास, फागु, चरित, चउपई आदि काव्यरूपों में उपलब्ध है तथा अधिकतर उपदेशात्मक है। रस काव्यों में प्रेम-विरह एवं युद्ध आदि का वर्णन है। लौकिककाव्य होने के कारण इनमें धार्मिक तत्वों का समावेश भी हो गया है। अपभ्रंश काव्य परंपरा में प्रथम जैन कवि स्वयंभू हैं जिनका आविर्भाव सातवीं शती में हुआ था। इनकी प्रमुख कृतियाँ है – रिट्ठनेमि चरिउ (अरिष्टनेमि चरित), पउम चरिउ (पद्म चरित) तथा स्वयं भूछन्दस। इनमें से पउम चरिउ में राम कथा है जो जैन धर्मानुसार रूप ग्रहण करती है तथा पांच खण्डों में विभक्त है। अरिष्टनेभि चरित में महाभारत और कृष्ण कथा चारकाण्डों में वर्णितहैतथा कौरव-पाण्डव युद्ध का वर्णन भी मिलता है लेकिन वह भी जैन धर्म की रीतिके अनुसार कृष्ण चरित में उभरते परिवर्तन के रूप में ही है।

दूसरे महत्वपूर्ण कवि पुष्पदंत हैं जिनका आदिर्भाव दसवीं शती के आरंभ माना जाता है। पुष्पुदंत पहले शैव थे, बाद में जैन दीक्षा ग्रहण की थी। इनकी कृतियाँ हैं – तिसट्ठि मही , पुरिसगुणालंकार, महापुराण और णायकुमार चरिउ इसमें से प्रथम कृति दो भागों- आदि पुराण एवं उत्तर पुराण जो तीन खण्डों में विभक्त हैं तथा तेईस तीर्थंकरों एवं भरत का चरितोल्लेख लिए हुए है। नागकुमार चरित में नौ संधियों में विभक्त चरितकाव्य है जो मूलत: श्रुत पंचमी के व्रत की महिमा लिए हुए है तथा अपभ्रंश भाषा में लिखी गई है। यह व्रतानुष्ठानिक कथा है। नागकुमार ने व्रतानुष्ठान के आधार पर 24 कामदेवों में से एक के रूप में जन्म लिया था। यह अपभ्रंश भाषा में लिखित नागकुमार के अलौकिक एवं चमत्कारिक कार्यों का वर्णन है। यही नहीं, आदिकालीन आधार सामग्री हेतु इसके अतिरिक्त मेरूतुंग की 'प्रबंध चिंतामणि, मुनि रामसिंह की पाहुड़ दोहा, धनपाल की **भविसयत्तकहा** भी जैन साहित्य की उल्लेखनीय कृतियाँ हैं।

6.5.5 चारण काव्य

आदिकाल की विशेष प्रवृत्ति रही हैं कि कवियों आश्रयदाता राजा के राज्याश्रित कवियों द्वारा उनकी प्रशस्ति एवं वीरता तथा शौर्य का गायन किया है तथा युद्धों का सजीव चित्रण भी। ऐसे कवियों को चारण कवि या दरबारी कवि कहा जाता था। ये चारण कवि अपने आश्रयदाता के यश, शौर्य, गुण में और वीरता की अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन करने में कुशल स्वामी भक्ति कवि थे। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते हैं कि , निरन्तर युद्धों के लिए प्रोत्साहित करने को भी एक वर्ग आवश्यक हो गया था। चारण इसी श्रेणी के लोग थे। उनका कार्य ही था हर प्रसंग से आश्रयदाता के युद्धोन्माद को उत्पन्न कर देने वाली घटनाओं का अविष्कार (हिंदी साहित्य की भूमिका) चारण कवियों ने अपने काव्य का प्रणयन अधिकतर डिंगल भाषा (राजस्थानी) में ही किया है : बोलचाल की राजस्थानी भाषा के साहित्यिक रूप को डिंगल कहा जाता है जो वीरगाथात्मक काव्य के लिए सर्वथा उपयुक्त है। चारण काव्यकारों में चंद बरदाई, दलपति विजय, जगनिक, नरपतिनाल्ह आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इनमें प्राय: सभी ने रासो काव्य परंपरा में अपनी काव्य कृतियाँ प्रस्तुत की हैं। चंद बरदाई ने पृथ्वीराजरासो , नरपति नाल्ह ने वीसलदेवरास , दलपति विजय ने खुमाणरासो तथा जगनिक ने परमालरासो (आल्हा खण्ड) की रचनाएं की .जगनिक ने परमात्मा रासों में क्षत्रिय जीवन का युद्ध के लिए ही अभीष्ट माना है –

बारह बरस लौ कूकर जिए औ तेरह लै जिए सियार।

बरस अठारह सभी जीये, आगे जीवन को धिक्कार।।

नरपति नाल्ह ने विग्रह राज (बीसल देव) का चरित वर्णन किया ।

यहीं पर आपको यह बताना भी अधिक उपयुक्त होगा कि आचार्य रामचंद्र शुक्ल वीरगाथा काल की आधार सामग्री में गृहीत पुस्तक भट्ट केदारकृत जयचंद प्रकाश तथा मधुकर कवि रचित जयमयंकजस चंद्रिका आज भी अनुपलब्ध हैं और उनका उल्लेख दयालदास कृत **राठौड री ख्यात**

में ही मिलता है। अनुमान किया जा सकता कि ये दोनों कृतियाँ महाराजा जयचंद के प्रताप और पराक्रम की गाथा से परिपूर्ण हो सकती हैं ।

6.5.6 लौकिक काव्य

जनता की चित्तवृत्तियों का सर्वाधिक सटीक वर्णन लौकिक या लोक साहित्य परक कृतियों में मिलता हैं। ये प्रमुख रचनाएं ऐसी होती हैं जो कभी कवि विशेष द्वारा रची गई होती हैं, पर कालान्तर में वे लोक कंठाश्रित हो जाती हैं और जो उनका गायन वाचन करते हैं उनकी अपनी काव्यात्मक सम्वेदना कब कितना योगदान करती हैं, उसकी कोई पहचान संभव नहीं होती है। दूसरी ओर ऐसी भी लौकिक परंपरा की काव्य कृतियाँ सामने आती हैं जिसमें विशेष विषयों से संबंध जुड़ा होता है जिसका साहित्येतर प्रवृत्ति के रूप में जनता के मनोरंजन हेतु प्रस्तुत किया जाता है। इसमें अमीर खुसरों द्वारा मुकारियों तथा पहेलियों का सृजन किया गया है। दूसरी ओर भक्ति एवं श्रृंगार की प्रकृति को लेकर विद्यापति ने साहित्य (पदावली) की रचना की धनपाल जैसे जैन कवि ने सामान्य व्यक्ति को नायक बनाकर काव्य सृजन की नई प्रवृत्ति आरंभ की।

अमीर खुसरों का आविर्भाव तेरहवीं शती (सन् 1255 ई.) में हुआ और उन्होंने लगभग सौ ग्रंथ की रचना की। उनमें से बीस ग्रंथ ही उपलब्ध होते हैं। उनकी काव्य कृति में पहेलियाँ, दो सुखन, मुकरियाँ, ढकोसला आदि संग्रहित हैं । उनकी रचनाएं प्राय: खड़ी बोली हिंदी का प्रारम्भिक किंतु ऐतिहासिक रूप है। कुछ उद्धाहरण द्रष्टव्य है –

एक थाल मोती से भरा।

सब के सिर औंधा धरा।

चारों ओर वह थाल फिरे

मोती उससे एक न गिरे (पहेली उत्तर : तारों भरा आकाश)

मुकरी का उदाहरण –

मेरा मोसे सिंगार करावत

आगे बैठ के मान बढावत

वासं चिक्कन ना कोउ हीसा

ऐ सखि सजन ना सखि सीसा

विद्यापति बिहार (दरभंगा) निवासी कवि हैं जिन्होंने मैथिली भाषा में श्री कृष्ण एवं राधा विषयक प्रेम विरह भावों को अभिव्यक्ति दी है। विद्यापति के प्रथम आश्रयदाता राजा कीर्ति सिंह और बाद में मैथिली नरेश शिव सिंह थे। विद्यापति ने अपने अधिकांश ग्रंथों की रचना संस्कृत में की। इनमें शैव सर्वस्वसार, प्रमाणभूत पुराण संग्रह ,भू-परिक्रमा, पुरूष परीक्षा, लिखनवली, गंगा वाक्यावली,

दान वाक्यावली, विभागसार, दुर्गाभक्ति तरंगिनी प्रमुख हैं। हिंदी साहित्य के अंतर्गत विद्यापति के तीन ग्रंथ उल्लेखनीय हैं – कीर्तिलता, कीर्तिपताका तथा पदावली. कीर्तिलता और कीर्तिपताका चरित काव्य है, पदावली श्रृंगारिक एवं भक्ति परक रचना है। कीर्तिलता राजा कीर्ति सिंह चरित विषयक रचना है जो कवि द्वारा अवहट्ठ (अपभ्रंश) की प्रथम रचना है और जिसे सुनने से पुण्य प्राप्ति होती है। भृंग-भृंगी संवाद द्वारा कहानी आगे बढ़ाई गई है। पृथ्वीराज रासो में शुक-शुकी सम्वाद है। इस रूप में दोनों कृतियों में साम्य है। पदावली पद संग्रह है जो मैथिली (भाषा) में रची गई है। वस्तुत: इस विद्यापति पदावली के गीतों का सर्वाधिक प्रचार चैतन्य महाप्रभु ने किया है। वे भाव विभोर इन नीतियों का गायन करते थे। इन पदों (82) में राधाकृष्ण प्रेम का श्रंगारिक चित्रण है। राधा के अप्रतिम सौन्दर्य का चित्रण विद्यापति करते है-

लोल कपोल ललित मनि-कुण्डल

अधर बिम्ब अध आई।

भौह भमर नासा पुट सुन्दर

देखि कीर लजाई

विद्यापति के इस गीत काव्य के नायक राधा-कृष्ण हैं, परन्तु यह केवल भक्ति रचना नहीं है। वास्तव में विद्यापति ने राधा-कृष्ण की प्रणय-लीला से सम्बद्ध पदों की रचना श्रृंगार चित्रणको ध्यान में रखकर की है। डॉ रामकुमार वर्मा कहते हैं कि, उन्होंने (विद्यापति ने) श्रृंगार पर ऐसी लेखनी उठाई है जिससे राधा और कृष्ण के जीवन का तत्व प्रेम के सिवाय कुछ नहीं रह गया है। ''(हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास) **भविष्यत्त कहा** यह अपभ्रंश में रचित कथा काव्य है जो श्रुतपंचमी के महात्मय का वर्णन है। इसके रचयिता जैन संप्रदाय में दीक्षित कवि (दसवीं शती) है। यह कृति बाईस संधियों में रचित दम्पत्ति धनपाल और कमलश्री के पुत्र भविष्यदत्त की कथा है जिसे उसका सौतेला भाई बंधुदत्त धोखा देकर सारी संपत्ति हड़प कर लेता है। भविष्यदत्त की सच्चरित्रता तथा वीरता के कारण राजपुर के राजा बंधुदत्त को दंडित कर भविष्यदत्त से अपनी बेटी का विवाह कर देते हैं। विवाह के उपरांत भविष्यदत्त को मनि विमल बुद्धि उपदेश देते हैं तथा उन्हीं के माध्यम से उसे अपने पूर्वजन्म की कथा का पता चलता है। अंत में भविष्यदत्त तपस्या करके निवार्ण की प्राप्ति करते हैं। यह काव्य कडवकबद्ध शैली में रचित प्रकृति, रूप, नखशिख वर्णनों का श्रेष्ठ आंकलन है जिसमें वीर श्रृंगार तथा शांत तीन रसों का समावेश है तथा इसकी भाषा अपभ्रंश या पुरानी हिंदी है। ढोलामारू रा दूहा , सन्देशरासक की परंपरा में रचा गया लोककाव्य है और वीसलदेवरासो की भांति सन्देश काव्य है। इसमें बचपन में हुए विवाह के उपरांत मारू अपने पति ढोला को कई सन्देश भेजती है। अंत में मारर (मारवणी) लोकगीतों के गायक ढोढी का दायित्व सौंपती हैं और वह अपने उद्देश्य में सफल होती है और उन दोनों का मिलन सम्भव हो जाता है। यद्यपि परदेश में ढोला का प्रेम

मालवाणी के साथ विकसित हो जाता है। इधर-मारवणी की मृत्यु के बाद मालवणी और ढोला का पुनर्मिलन हो जाता है।

ढोलाकाव्य सौष्ठव से परिपूर्ण अनुपम लोकगाथा है। जिसमें श्रृंगार का संयोग कालीन वर्णन मर्यादित एवं अलौकिक है। नख-शिव परंपरा युक्त वियोग वर्णन में हृदय की सच्चाई का स्वाभाविक एवं प्रभावशाली वर्णन है। मारवणी ढोढी के समक्ष अपने सन्देश में नारी हृदय को खोल कर रख देती है –

ढाढी एक संदेसड़उ ,प्रीतम कहिया जाइ।

सा घण बलि कुइला भई भसम ढँढोलिसि आइ।

ढाढ़ी जे प्रीतम मिलइ, यूं कहि दाखनियाह।

ऊँजर नहिं छई प्रणिय था दिस झल रहियाह।

अर्थात् घनि (पत्नी) जलकर कोयला हो गई है। अब आकर उसकी भस्म ढूंढना । अब उसके पंजर में प्राण नहीं है केवल उसकी लौ तुम्हारी ओर झुककर जल रही हैं, मारवणी का वह निवेदन जहाँ एक ओर चारण काव्यों के प्रणयन की व्यापकता बढ़ाता है, वही जन साधारण के कवि की स्वान्त:सुखाय लोक भावनाओं को जीवंत रूप में सहज ही प्रस्तुत करता है।

बोधप्रश्न 2

1. सिद्धकाव्य किसे कहते हैं ?
2. नाथ कवियों की विशेष प्रवृत्ति पर प्रकाश डालिए।
3. जैन काव्य का महत्व स्पष्ट कीजिए।
4. चारणकाव्य का स्वरूप स्पष्ट कीजिए।
5. लोकाश्रित ढोला मारू रा दूहा का महत्व स्पष्ट कीजिए।

6.6 आदिकालीन काव्य प्रक्रिया

अब तक के अध्ययन से आप जान चुके हैं कि आदिकाल की परिस्थितियाँ कैसी बन पड़ी थी जिन्होंने तत्कालीन कवियों में काव्य रचना की विशेष प्रवृत्तियों को जन्म दिया था। आप इस इकाई से यह जान ही चुके हैं कि परिस्थितियाँ कवि को उत्प्रेरित करती हैं और अवसर भी देती हैं कि वह अपने समय की यथार्थ चेतना की अभिव्यक्ति काव्य सर्जना में करें। परिस्थितियाँ और प्रवृतियाँ परस्पर परिपूरक दायित्व से जुड़ी रहती हैं, इन्हें अलग करके नहीं देखा जा सकता है। ये दोनों ही कवि की रचना-प्रक्रिया का मूलाधार बनती हैं।

ऐतिहासिक काव्य – आदिकाल की संक्रमणशील परिस्थितियों और तत्कालीन राजा-महाराजाओं तथा विदेशी आक्रामकों के कारण कवियों ने अपने आश्रयदाता राजा के कुल गौरव एवं शौर्य-गाथा का चित्रणयुगीन आवश्यकता के रूप में किया है। पराजय और हताषा के युग में अपने पूर्व-पुरूषों के शौर्य एवं गौरव को दुहराने के लिए उन्हें इतिहास का सहारा लेना ही अनिवार्य था, पर इतिहास को अपने राजा और उसकी प्रशास्ति के अनुरूप मोड़ लेना भी अनिवार्य था। यही कारण है कि उसमें इतिहास एवं कल्पना (फैक्टस और फिक्शन) का आश्रय लेकर उन्होंने अतीत को वर्तमान में देखने की सफल प्रयास किया है।

काव्य रचना इतिहास नहीं होती है, पर इतिहास का आश्रय काव्य की सम-सामयिक उपदेयता बढ़ा देता है। कवि इतिहासकार भी नहीं होता जो घटनाओं का यथाक्रम विवरण दें, वह तो काव्य-प्रयोजन सिद्ध घटनाक्रमों का आश्रय लेता है और कल्पना से उसमें काव्यात्मक ऊर्जा का मिश्रण कर उसे श्रवणीय (दरबारी वातावरण में) और पठनीय (लिखित कृति रूप में) बना देता है। पृथ्वीराज रासो का प्रथम संपादन जब कर्नल जेम्स टाड ने उदयपुर से पच्चीस किलोमीटर दूर एकांत में निर्मित एजेण्ट के बंगले में पशु चराने वालों से सुनकरकिया तो प्रो व्हूलर में उसे जाली करार दे दिया था क्योंकि जगनिक द्वारा संस्कृत की हस्तलिखित प्रति **पृथ्वीराज विजय** में उल्लिखित सन् सम्वतों का साम्य विविध शिलालेखों से हो जाता था, पर पृथ्वीराज रासो में उल्लिखित ऐतिहासिक घटना क्रम से साम्य नहीं रखता था। ऐसे ही किसी भी काव्य ग्रंथ में इतिहास सप्रसंग सांकेतिकता तो ले सकता है पर कल्पना ही अधिक व्यापकता ग्रहण करती है तभी कवि अपने काव्य प्रयोजन की सिद्धि में सफल हो पाता है। इस संदर्भ में यह कहा जाना भी कि पृथ्वी राज रासो ही नहीं अनेक अन्य रचनाएं ऐसी हैं, जो इतिहास का संस्पर्श लेकर ही चली हैं, उनमें सन् सम्वत का वह दखल नहीं हैं जो इतिहास में होता है, पर काव्यात्मक दृष्टि से वे अपने चरित नायक को ऐतिहासिक सिद्ध कर देती है, शेष कथा का विकास कवि कल्पना का विस्तार लिए है (रासो काव्यधारा)

उक्त विवरण के साथ आप यह भी जान सकते हैं कि आदिकाल के हिंदी ऐतिहासिक काव्यों में ऐतिहासिक तथ्यों की ओर कवि ने ध्यान नहीं दिया। उसने कल्पना का ही अधिक सहारा लिया और काव्य-निर्माण पर विशेष ध्यान दिया। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का कथन इस संदर्भ में महत्वपूर्ण सिद्ध होता है कि ऐतिहासिक व्यक्तियों के नाम पर काव्य लिखने की प्रथा बाद में खूब चली।.....परन्तु भारतीय कवियों ने ऐतिहासिक नाम भर लिया, शैली उनकी वही पुरानी रही जिसमें काव्य निर्माण की ओर अधिक ध्यान था, विवरण संग्रह की ओर कम, कल्पना अधिक , तथ्यनिरूपण कम ,संभावनाओं की ओर अधिक रूचि थी, घटनाओं की ओर कम, उल्लासित आनंद की ओर अधिक झुकाव था, तथ्यावली की ओर कम।..... पृथ्वीराज रासो में चंद बदराई ने कल्पना और तथ्य का सुन्दर सामंजस्य उपस्थित किया है, पर इसमें भी कल्पना तथ्य पर हावी हो गई है। (हिंदी साहित्य का आदिकाल) आदिकाल की आधार सामग्री में और नई खोजों से प्राप्त तद्युगीन अन्य काव्यकृतियों का मूल्यांकन किए जाने के उपरांत आपके समक्ष यह तथ्य बहुत

ही स्पष्ट रूप में रखा जा सकता है कि युद्ध सामंती परिवेश की अनिवार्यता है और उसके लिए प्रतिपक्ष से शत्रुता ही अनिवार्य नहीं है क्योंकि आल्हाखण्ड (परमाल रासो) में कवि एक स्थान पर कहता है-

''जेहि कि कन्या सुन्दर देखी

तेहीं घर जाय धरै हथियार''

यानी जिस किसी परिवार में सुन्दर कन्या देखी, वहीं वीर योद्धा ने उसकी प्राप्ति के लिए उसके परिवार के समक्ष तलवार दिखाकर विवाह के लिए बाध्य कर दिया।

इस प्रकार के उल्लेख से आप समझ सकते हैं कि राजाओं द्वारा किस प्रकार अन्य राजाओं को युद्ध अथवा बेटी से विवाह के विकल्प दिए थे क्योकि हारकर या बेटी देकर दोनों की रूपों में उक्त राजा की अधीनता या आश्रय ही उनकी नियति रह गई थी। प्रश्न यह भी है कि आदिकाल में लिखित काव्यों में श्रृंगार का निरूपण किस रूप में हुआ है। प्रथम रूप में वीरगाथात्मक काव्यों के स्तर पर प्रेम और युद्ध के साथ-साथ श्रृंगार का चित्रण किया गया है। पृथ्वीराज रासो इसका श्रेष्ठ उदाहरण है। पृथ्वीराज रासो के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उसमें प्रेम का वर्णन युद्ध के फलक पर हुआ है। लेकिन आदिकाल के अन्यकाव्यों में ऐसे भी उदाहरण हैं, जिनमें अलग से नायक-नायिका के प्रेम और विरह (संयोग और वियोग) का चित्रण किया गया है। वीसलदेव रास, विद्यापति पदावली, ढोलामारू दूहा के उदाहरण इसके साक्षी हैं। विजयपाल रासो की खण्डित सामग्री में भी श्रृंगार और प्रेम का ही निरूपण मिलता है। इस रासो के 43 छन्द मिले हैं।

निष्कर्ष रूप में यह कहना आप के लिए अधिक सहज है कि आदिकाल के काव्यों में अपने आश्रयदाता के मनोरंजन के लिए शौर्य एवं प्रशस्ति गायन (यानी वीर रस) के अतिरिक्त श्रृंगार (संयोग-वियोग) के चित्र ही उनके काव्य कौशल को प्रशंसा दिला सकते थे।

6.6.3 लौकिक काव्य - अब इकाई के इस अंश में आदिकाल में लिखत काव्य प्रक्रिया का यह स्वरूप आपकेसामने प्रस्तुत है जिसे कहा जाता है-लौकिक काव्य। यद्यपि खुसरोकी पहेलियोंका उल्लेख आधार सामग्री के रूप में आचार्य रामचंद्र शुक्ल कर ही चुके थे। अन्य और परवर्ती सामग्री उन्हें बीसवीं शती के दूसरे दशक तक उपलब्ध हो गई होतीतो यह संभव था कि इस प्रक्रिया में वह भी आपके अध्ययन के लिए उपलब्ध करा दी गई होती। पर शुक्ल जी के समय में जब हिंदी शब्द सागर की भूमिका को वे इतिहास का रूप दे रहे थे, तब साधनों के अभाव और लेखक की सीमाओं के कारण ऐसा संभव नहीं हो सकता था।

परवर्ती काल में हिंदी साहित्येतिहासकारों के प्रतिस्पर्धात्मक इतिहास लेखन ने गर्भगृहों, मंदिरों-उपासरों, निजी पुस्तकालयों के द्वार खटखटाए और सामग्री की खोज में लगे तो आदिकाल की इस प्रवृति-प्रक्रियाका क्षेत्र विस्तार हुआ और अब इस क्षेत्र में ढोलामारूदा दूहाका उल्लेख अनिवार्यहोगया है। 'वसंतविलास', जयचंद्र प्रकाश और जयमंयकजसचिद्रका, को भी

लौकिककाव्य के रूप में स्वीकार कियाजाने लगा है। यद्यपि हम पिछली इकाई में (पांचवीं में) आपकोयहबता चुके हैं कि 'जयचंद्र प्रकाश' और जयमयंकजस चंद्रिका का उल्लेख ही हैं,वह भी राठौढा री ख्यात में उल्लेखकार ने स्वयं इन कृतियों के संबंध में कुछ भी विवरण नहीं दिया है।

आप यह जान कर अपना ज्ञान-वर्द्धन करेंगे कि इन लौकिक काव्यों की वर्ण्य-वस्तु श्रृंगार रस प्रधान है। वीर रस का उसमें योगदान नहीं है। वीर और श्रृंगार रस एक दूसरे के पूरक होते हैं पर यह नितान्त श्रृंगारिक रचनाएं हैं। 'ढोला मारू रा दूहा' प्रेमकाव्य है, वसंत विलास में वसंत और स्त्रियों पर उसके विलास पूर्ण प्रभाव का मनोहारी चित्रण किया गया है। उसका ही एक उदाहरण दृष्टव्य है –

इणिपरि कोइलि कूजइ, पूजइ यूवति मणोर।

विधुर वियोगिनि धूजइ, कूजइ मयण किशोर।

अर्थात एक ओर आम्रवृक्षों पर कोयल कूकती है, दूसरी ओर पति युक्त युवतियाँ विलास मग्न होकर मनोरंजन करती हैं। इसे देखकर विधुर जन और वियोगिन नारियाँ कांपने लगती हैं, क्योकि मदन किशोर(कामदेव) का कूजन उनके मन में प्रिय के अभाव का आभास देता रहता है। आदिकाल के स्तर पर लौकिक काव्य में ऐसी रचनाएं हैं जो इस काल खण्ड में लिखी गई हैं, पर उनकी वर्ण्य-वस्तु रीतिकालीन है।

बोध प्रश्न 3

1. आदिकाल की काव्य प्रक्रिया समझाइए।
2. आदिकाल के ऐतिहासिक काव्यों में ऐतिहासिकता क्यों नहीं है ?
3. आदिकाल में श्रृंगारिक रचनाओं का अंबार क्यो रहा है ?
4. आदिकाल के लौकिक काव्य की विषय वस्तु पर प्रकाश डालिए।

6.7 सारांश

इस संपूर्ण इकाई का अध्ययन करने के बाद आप जान चुके होंगे कि आपको आदिकाल के विविध स्वरूपों का अच्छा परिचय हो गया है कि आदिकाल में मात्र वीरगाथाएं ही नहीं लिखी जा रही थीं और जो वीरगाथाएं थी उनके ऐतिहासिकता नामोल्लेख भर रही है, क्योंकि कवि का उद्देश्य इतिहास निर्माण करने के स्थान पर अपने आश्रयदाता को प्रोत्साहित एवं उद्बोधित करने के लिए ही कल्पना प्रसूत काव्य रचना प्रस्तुत करना था । इसीलिए तत्कालीन विषम राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, साहित्यिक परिस्थितियों के बीच अपने आश्रयदाता का मनोबल बनाए रखने के लिए कवि तथ्य एवं कल्पना के आश्रय में मनोरंजक एवं श्रृंगारिक काव्य प्रस्तुत करता था। इसी

कारण इस काल खण्ड में इतिहास न लिखकर ऐतिहासिक (रस ग्राह्य), श्रृंगारिक एवं लौकिक काव्य रचनाओं की सृष्टि हुई हैं।

6.8 शब्दावली

आगम	:	जैन विद्या में वेद निरूपण
आक्रांता	:	भयभीत करने वाला
चरितकाव्य	:	ऐसा काव्य जिसमें किसी व्यक्ति का चरित चित्रण प्रमुख हो
पदावली	:	पद शैली में रचित काव्य। इसका मूल स्रोत लोकगीत है। पद में प्राय: किसीन किसी राजा का निर्देश होता है
रास	:	रास एक गेय रूपक
रासो	:	रासक शब्द से निर्मित। व्यापक रूप से ऐसा चरित्र काव्य जो जीवन का समग्र चित्रण लिए हो।
चारण	:	राजाश्रय प्राप्त कवि जिनका काम राजा की प्रशस्ति करना होता था .

6.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. हजारीप्रसाद द्विवेदी : हिंदी साहित्य का आदिकाल , हिंदी साहित्य की भूमिका
2. रामचंद्र शुक्ल : हिंदी साहित्य का इतिहास
3. राहुल सांकृत्यायन : हिंदी काव्यधारा
4. विजय कुलश्रेष्ठ : रासो काव्यधारा
5. शिवकुमार शर्मा : हिंदी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ
6. हरिश्चन्द्र वर्मा : हिंदी साहित्य का इतिहास
7. रामकुमार वर्मा : हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास

6.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. आदिकाल की परिस्थितियों पर अपने विचार स्पष्ट कीजिए।
2. आदिकाल की प्रमुख प्रवृत्तियाँ क्या थी, उनका विवेचन कीजिए।
3. आदिकालकी सर्जनात्मक प्रक्रिया पर अपना सटीक निबंध लिखिए।

इकाई 7 हिंदी साहित्य की आदिकालीन कविता में रस,छन्द,अलंकार योजना

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 आदिकालीन काव्य – विवेचना
7.3.1 अपभ्रंश और हिंदी का वीर काव्य
7.3.2 अपभ्रंश और हिंदी का भक्तिकाव्य
7.3.3 अपभ्रंश और हिंदी का श्रृंगार काव्य
7.4 आदिकालीन काव्य पद्धति
7.4.1 कथात्मकता
7.4.2 कथा अभिप्राय (कथा रूढियाँ)
7.4.3 काव्य पद्धति
7.5 आदिकालीन काव्य : अभिव्यंजना शिल्प
7.5.1 काव्य रूप वैशिष्ट्य
7.5.2 रस विधान
7.5.3 अलंकार विधान
7.5.4 गेयता एवं छन्द- प्रयोग
7.6 सारांश
7.7 शब्दावली
7.8 उपयोगी पाठ्य सामग्री
7.9 निबंधात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

अब तक किये गए अध्ययन से आप जान चुके हैं कि इतिहास लेखन में जितना तथ्यात्मक एवं वैज्ञानिक अध्ययन-मनन आचार्य रामचंद्र शुक्ल का रहा है, उसको ही अधिसंख्य साहित्येतिहासकारों ने महत्व दिया है। आप आचार्य शुक्ल द्वारा सुझाए गए काल विभाजन में प्रारंभिक काल के नामकरण संबंधी विकल्प देने का कारण भी स्पष्टत: जान चुके हैं कि क्यों शुक्ल जी ने आदिकाल को वीरगाथा काल का विकल्प दिया था। परवर्ती साहित्येतिहासकारों की आलोचना प्रत्यालोचना और आधार सामग्री विषय मत-भिन्नता के आधार पर वीरगाथा के अन्तर आदिकाल नामकरण की सटीकता पर आप यह सुनिश्चित करवाने में पूर्णत: सफल रहे हैं कि आदिकाल नाम ही सर्वथा उपयुक्त है।

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप आदिकालीन हिन्दी कविता की अभिव्यंजनात्मक विशेषताओं से परिचित होंगे तथा आदिकालीन कविता में निहित रस ,छंद एवं अलंकारों (काव्य सौंदर्य) का ज्ञान प्राप्त करेंगे . साथ ही साथ आप सम्पूर्ण आदिकालीन काव्य-पद्धतियों का विश्लेषणात्मक परिचय प्राप्त करेंगे

7.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर यह जान सकने में समर्थ होंगे कि –

- आदिकाल के हिंदी साहित्य को पूर्व साहित्य परम्परा से क्या प्राप्त हुआ था ?
- अपभ्रंश भाषा और हिंदी भाषा का अंत:संबंध भी ज्ञात हो सकेगा।
- पुरानी हिंदी और अपभ्रंश भाषा के काव्य का अगला रचना विकास हिंदी की आदिकालीन कविता ही है।
- हिंदी की आदिकालीन काव्य पद्धति कि प्रवृत्ति क्या थी।
- आदिकालीन काव्य के अभिव्यंजना शिल्प के विशिष्ट क्या थी।

7.3 आदिकालीन काव्य – विवेचना

अब तक के अध्ययन से आप जान चुकें हैं कि आदिकाल राजनीतिक ,सांस्कृतिक, सामाजिक एवं आर्थिक अस्थिरता तथा बिखराव का काल था और ऐसी विषम परिस्थितियों ने उस काल के रचनाकारों या दरबारी कवियों को जिस प्रकार का परिवेशगत प्रोत्साहन दिया, सर्जक-प्रतिभा ने वैसी ही सर्जनात्मक ऊर्जा भी प्रदान की है। आचार्य शुक्ल का यह कथन भली-भांति अपना स्वरूप ग्रहण करता है कि ,**जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। आदि से अंत तक इन्हीं चित्तवृत्तियों की परंपरा**

को परखते हुए साहित्य-परंपरा के साथ उसका सामंजस्य दिखाना ही साहित्य का इतिहास कहलाता है। (हिंदी साहित्य का इतिहास)

उक्त आधार पर ही अब आपके समक्ष आदिकाल में प्रचलित अपभ्रंश और हिंदी भाषाओं के साहित्य की निम्न सारणियों का विवेचन किया जा रहा है –

7.3.1 अपभ्रंश और हिंदी का वीर काव्य

आप पहले भी जान चुके हैं कि आदिकाल में अपभ्रंश भाषा में साहित्य-सर्जना हो रही थी। अपभ्रंश भाषा में रचित चरित-काव्यों में पुष्पदंत कृत नागकुमार चरित (णायकुमार चरिउ) और जसहर चरित (जसहर चरिउ) प्रमुख है। इनके कथानायक वीरता और शौर्य का जीवंत प्रतिमान है, पर इन्हें ऐतिहासिक वृत्त नहीं माना जा सकता, क्योंकि इतिहास में उनका कोई उल्लेख नहीं है। इस कालखण्ड में हिंदी में जो भी चरितकाव्य लिखे गए, उनको 'रासो' काव्य कहा गया। आपको 'पृथ्वीराज रासो' का नाम स्मरण होगा। इसी प्रकार इस कालखण्ड में हमीर रासो, खुमाण रासो आदि का उल्लेख है और वे भी इतिहास समस्त चरित्र तो हैं, पर कवि-कल्पना पर आधारित रूप में उनके राज-दरबार, शौर्य, विवाह, वीरता का अतिश्योक्तिपूर्ण वर्णन ही उपलब्ध है। अपभ्रंश में जहाँ पौराणिक और अनैतिहासिक कथा नायकों एवं उनके सहयोगियों की कीर्ति-गाथाएं गायी गई हैं, वही हिंदी में पात्रों को ऐतिहासिक परिवेश से ग्रहण भर किया गया है और शेष विवरण कवि-कल्पना शक्ति की देन ही रहा है।

7.3.2 अपभ्रंश और हिंदी का भक्तिकाव्य

अपभ्रंश साहित्य में एक ओर जैन कवियों द्वारा राम और कृष्ण तो दूसरी ओर सिद्धों-नाथों कवियों द्वारा धार्मिक रूढियों और बाह्यडम्बरों का विरोध करते हुए अंतस्साधना पर बल दिया गया है। इस प्रकार अपभ्रंश भाषा एवं साहित्य में भक्ति की धारा का एक सुस्पष्ट स्वरूप उभरता है, जो राम और कृष्ण के काव्य का परिचायक है भले ही हिंदी की भक्तिधारा पर आदिकालीन अपभ्रंश में लिखित राम और कृष्ण काव्य का कोई स्पष्ट प्रभाव रेखांकित नहीं होता है। हिंदी के आदिकालीन काव्य में राम और कृष्ण कथा का उल्लेख (पृथ्वीराज रासो) में मिलता है, पर इसका स्पष्ट प्रभाव आगे भक्तिकाल में देखा जा सके संभव नहीं लगता। यद्यपि इस कालखण्ड में सिद्ध-नाथ भक्तिकाव्य के प्रादुर्भाव का प्रभाव आदिकाल-परवर्ती कवि कबीर पर देखा जा सकता। इस निर्गुणिया कबीर के संबंध में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते हैं कि ''यह सम्पूर्णत: भारतीय है और बौद्ध धर्म के अंतिम सिद्धों और नाथ पंथी योगियों के पदादि से उसका सीधा संबंध है।" अत: हिंदी की आदिकाल-परवर्ती ज्ञानश्रयी धारा के सूत्र सरहपा, शबरपा और कण्हपा के रूप में विद्यमान मिलते हैं।

7.3.3 अपभ्रंश और हिंदी का श्रृंगार काव्य

अभी तक आप आदिकाल के अपभ्रंश एवं हिंदी के काव्यों में चरित्रांकन और भक्तिमयता के कतिपय रूपों का विवेचन पढ़ चुके हैं। इस अंश में आपको तद्युगीन श्रृंगार चित्रण का परिचय प्राप्त होगा। इस काल खण्ड की अपभ्रंश काव्य परंपरा में हेमचंद्र के व्याकरण में व्यक्त श्रृंगार भावना को परे छोड़ भी दे (क्योंकि इससे चमत्कार प्रधानता है जो आगे चलकर रीतिकाल में अपने चरमोत्कर्ष पर थी) तो अब्दुल रहमान कृत सन्देश रासक (बारहवीं शती) को अस्वीकार नहीं कर सकते। यह अपभ्रंश भाषा में लिखित एक विरह एवं सन्देश काव्य है। अपने में स्वतंत्र प्रत्येक छन्द होते हुए 223 छन्दों में एक विरह कथा पिरोई गई है।

सन्देश रासक की परम्परा में इस कालखण्ड की हिंदी में भी वीसलदेव रास और ढोलामारू रा दूहा (क्रमश: चौदहवीं एवं पंद्रहवी शती ईस्वी) उपलब्ध हैं। इनमें से बीसल देव मूलत: विरह काव्य है और सन्देश रासक से कहीं अधिक लोक जीवन का प्रभाव लिए है। इसके छंद लोकगीत से साम्य रखते प्रतीत होते हैं। अत: इसे आप सन्देश रासक का अनुकरण कर्ता काव्य नहीं कह पायेंगे। दूसरे काव्य ढोला मारू रा दूहा को आप उक्त दोनों से कदाचित इस रूप में भिन्न पाएंगे कि विरह काव्य होते हुए भी इसे कथा काव्य (कथा-प्रधान) के रूप में प्रस्तुत किया गया है तथा आप यह अंतर भी देख सकेंगे कि इसमें सन्देश वाहक क्रौंच पक्षी था फिर ढाँढी है – जबकि संदेश शासक में नायिका अपना सन्देश एक पथिक से कहती हैं और वीसल देव रासो में राज्य के पंडित को सन्देश वाहक बताया जाता है। यह शैली की दृष्टि से लोकगीत के निकट है।

7.4 आदिकालीन काव्य पद्धति

आदिकाल के काव्य पर अपभ्रंश का ऋण बना रहेगा – इसमें दो मत नहीं हो सकते। अभी आप देख चुके हैं कि चाहे आदिकाल के चरित काव्य हैं या भक्ति-काव्य अथवा श्रृंगार काव्य, वे सभी अपने से पूर्व प्रचलित एवं समर्थ भाषा अपभ्रंशकी रचनाओं से ही उत्प्रेरित रहे हैं तथा स्वयं के प्रयासों से वे अपभ्रंश भाषा की रचनाओं का मात्र अनुकरण नहीं है, उनमें कुछ अंतराल विशेष अवश्य बना हुआ है, फिर भी आप इतना तो स्पष्ट रूप से समझ ही गए हैं कि अपभ्रंश भाषा में लिखित काव्य हिंदी के आदिकाल (और परवर्ती काल भी) की काव्य सर्जना की पूर्व-पीठिका है। इन पंक्तियों के आधार पर यह वास्तविकता भी आपकी जानकारी में आ जानी चाहिए कि हिंदी भाषा एवं साहित्य ने अपभ्रंश भाषा को अपनाते हुए अपनी प्रकृति के अनुरूप उसका विकास किया है, जिसे निम्नलिखित रूप से देखा जा सकता है –

7.4.1 कथात्मकता

आदिकाल के अधिसंख्य काव्यों की रचना कथात्मक है जिसे शैली भी कहा जा सकता है, लेकिन कथा का अर्थ विशेष भी होता है। संस्कृत काव्यशास्त्र में कथा का प्रयोग एक निश्चित काव्य

रूप के लिए किया जाता है, पर आप यह भी जान लीजिए कि संस्कृत साहित्य में 'कथा' गद्य में लिखी जाती थी, जबकि संस्कृतेतर भाषाओं – प्राकृत और अपभ्रंश आदि में पद्य में लिखी जाती थी। आप यह भी जान लीजिए कि प्राकृत और अपभ्रंश में ऐसे काव्य लिखे गए जिन्हें 'कथा' कहा जाता था। इस काल में कथा की पहली विशेषता पद्यात्मकता है। कथा प्रधान रूप में ऐसी कहानी होती है जो सीधे नहीं कही जाती है, अपितु दो पात्रों के माध्यम से कही जाती है। हिंदी के आदिकाल में ऐसी कथाओं का प्रचलन था जिसमें श्रोता-वक्ता अथवा शुक-शुकी, भृंग-भृंगी के पारस्परिक संवादों के माध्यम से यह कथा प्रस्तुत की जाती थी। 'पृथ्वीराजरासो'और 'कीर्तिलता' में यही कथा शुकी तथा भृंग-भृंगी के रूप में उपलब्ध है। विद्यापति ने भृंग-भृंगी के माध्यम से वर्णित कीर्तिलता की कथा को 'कथानिक' या 'कहानी' कहा है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा भी है कि पृथ्वीराज रासो में चंद का मूल ग्रंथ शुक-शुकी संवाद के रूप में लिखा गया था –

कहै सुकी सुक संभली। नींद न आवे मोहि।

झुकी सरिस सुक उच्चरयो धरयो नादि सिर चित्र।।

आदिकाल के काव्यों पर विचार करते समय हम यह देख चुके हैं कि आदिकाल के रचनाकार संभावनाओं और कल्पना पर अधिक बल देते हैं। इस कल्पना को यथार्थ बनाने के लिए कवियों ने कथा कहने की कुछ रूढ़ियाँ निर्मित की हैं –

1. कथा कहने वाला शुक –
2. प्रेमोदय –

(क) स्वप्न में प्रिय-दर्शन होना

(ख) चित्र देखकर सम्मोहित होना

(ग) भिक्षुक या बंदियों के मुख से कीर्ति वर्णन सुनकर प्रेमासक्त होना

3. आकाशवाणी
4. षड्ऋतु या बारहमासा से माध्यम से विराहाभिव्यक्ति

भेजन हंस-कपोत आदि से सन्देश भेजना

6. नारी-उद्धार

(च) युद्ध करके

(छ) मस्त हाथी के आक्रमण से बचाकर

(ज) कापालिक द्वारा देवीको बलि देने से

(स) प्रेम का विस्तार

आप समझ गए हैं कि यह मात्र संस्कृत की मूल कथा का गद्यात्मक रूप न होकर वह कथात्मकता लिए हुए जो किसी कहानी को आरंभ करके उसके चरम तक पहुँचा कर निश्चित परिणति देती है। आदिकाल में रचित पृथ्वीराज रासो में अनेक सर्ग इसी प्रकार की कथात्मक व्यवस्था से परिपूर्ण है।

बोध प्रश्न 1

1. अपभ्रंश और हिंदी के चरित काव्यों पर अपने विचार प्रकट कीजिए ?
2. अपभ्रंश-हिंदी के भक्ति काव्य का विवेचन कीजिए।
3. अपभ्रंश-हिंदी के श्रृंगार काव्य पर अपना मत व्यक्त कीजिए।
4. आदिकाल के समग्र काव्य का विवेचन अपने शब्दों में कीजिए।

7.4.2 कथा अभिप्राय (कथा रूढियां)

कथा अभिप्राय का प्रयोग आदिकाल के काव्यों से होता हुआ परवर्ती काल खण्डों के कथाकाव्यों में भी हुआ है। आप आदिकाल में काव्यों के परिचय में यह देख ही चुके हैं कि इस काल खण्ड के अधिसंख्य काव्य कथात्मक है। इन कथात्मक काव्यों में रचनाकारों ने कथा अभिप्राय (कथा रूढियां) का प्रयोग किया गया है।आपकी जानकारी के लिए यह बताना भी अधिक उपयुक्त होगा कि कथा अभिप्रायों का क्षेत्र मूलत: लोक विश्वास होते हैं जो लोक मानस की हर अभिव्यक्ति में बुने और गुंथे रहते हैं, क्योंकि ये तत्त्व दीर्घ लोक चेतना के संवाहक होते हैं।

भारतीय साहित्य में कथा अभिप्रायों का अंकन बहुलता के साथ मिलता है। कुछ विद्वान लोकविश्वास एवं लोक कथाओं का विश्वास नहीं करते हैं, जबकि यह वास्तविकता है कि लोक साहित्य की अभिव्यक्तिका परिनिष्ठित रूप ही साहित्य के रूप में उभर कर आता है। यह एक प्रकार का काव्यशिल्प माना जा सकता है जिसके आधार पर काव्य में विविध प्रतीकों का प्रयोग संभव होता है। अपभ्रंश भाषा में सरहपा की रचनाओं में ऐसी प्रवृत्ति देखने को मिलती है। हिंदी की मुक्तक काव्य कृतियों में अधिसंख्य कवियों (बिहारी को छोड़कर) ने इस परिपाटी का पालन किया है। स्वयंभू और पुष्पदंत ने काव्यों में कथा अभिप्रायों का प्रयोग किया है। अपभ्रंशकाव्यों में विशेष रूप से कथा अभिप्रायों का प्रयोग निम्न प्रकार मिलता है –

1. उजाड़नगर का मिलना, कुमारी-दर्शन तथा विवाह – भविस्यत्त कहा
2. प्रथम-दर्शन, गुणश्रवण या चित्र दर्शन से प्रेमोदय (करकंडु चरिड, णायकुमार चरिउ)
3. दीपान्तर-विशेषकर सिंहल द्वीप की यात्रा और जहाज डूबना

उनका प्रभाव परवर्ती काव्यों (चरित काव्यों भविष्यदत्त कथा) में देखा जा सकता है।

7.4.3 काव्य पद्धति

अभी तक आप आदिकाल खण्ड में लिखित काव्यों की कथात्मकता, कथा अभिप्रायों का अध्ययन करके यह जान चुके हैं कि ये सभी रचनाएँ लगभग एक साथ केन्द्र पर ही संयोजित हुई हैं और आकार की अपेक्षा के अनुरूप संयोजक कथाएँ, उपकथाएँ, वीर कथाएँ और प्रेम कथाओं का मिश्रण कवि यथानुरूप करता है। अपभ्रंश से चलकर हिंदी भाषा तक की यात्रा करते हुए आदिकाल की काव्य-धारा यद्यपि अपनी स्वयं संरचनात्मक स्थिति नहीं बना सकी थी तद्यपि आपको यह बता दें कि हिंदी ने अपभ्रंश के जिस गुण का सबसे अधिक निर्वाह किया गया है, वह काव्य रूप और काव्य-शिल्प है। अपभ्रंश भाषा एवं काव्य-प्रवृत्ति का लाभ हिंदी के आदिकालीन कवियों ने निसंकोच रूप से लिया है। इसको हम कई स्तरों पर विश्लेषित कर सकते हैं। सबसे पहले छन्द की चर्चा करते हैं। अपभ्रंश काव्यों में सर्वाधिक प्रयुक्त छंद दोहा (दूहा) है, इसके अतिरिक्त चौपाई,छप्पय, रोला आदि छन्दों का प्रयोग भी अपभ्रंश काव्यों में मिलता है। परवर्ती हिन्दी काव्यों में इन छंदों का प्रयोग मिलता है . आदिकालीन हिंदी काव्यों में जो गेयता उपलब्ध होती है, उसके संबंध में भी आप यह जान लीजिए कि यह गेयता भी उन्होंने अपभ्रंश काव्य से ग्रहण ली है, अपभ्रंश काव्यों में रास, फागु, चांचर आदि के रूप में गेय काव्य परंपरा सुरक्षित चली आ रही है, उनका भी उपयोग हिंदी काव्य धारा में मिलता है . रासा छन्द का प्रयोग रासो काव्य में हुआ है। हिंदी के बीसलदेव रासो है जो ऐसा काव्यरूप है जो मूलत: कोमल भावों (प्रेम प्रसंग,श्रृंगार वर्णन आदि) का वाहक था, किन्तु वीर गाथाओं के लिए भी उसका काव्य रूप का उपयोग हुआ है।

फाग एक लोकगीत है जो बसंत ऋतु में गाया जाता है। जैन कवियों (मुनियों) के धार्मिक विचारधारा से परिपूर्ण रासकाव्यों में फागु काव्य पद्धति के रूप में अपभ्रंश भाषा में प्रचलित रहा है। आदिकाल के हिंदी काव्यों में भी फागु नामक कई रचनाएँ उपलब्ध होती है जो इस काल खण्ड में जैन मुनियों द्वारा प्रस्तुत की गई है। परवर्ती काल में कबीर दास के नाम से भी कुछ 'फाग' हिंदी में उपलब्ध होते हैं। लोकोत्सव होली पर भी आज लोग सामूहिक रूप में फाग (फागु) गाते हैं।

आप यह तो जानते हैं कि हिंदी में भी अपभ्रंश काव्यों से गेयता प्राप्त हुई है और यह कहा जा सकता है कि गेयता की एक सुदीर्घ परंपरा चर्या गीतों से आगे चलकर सूरदास (सूरसागर), तुलसीदास (गीतावली और विनय पत्रिका) से नवगीत तक चलती गई है।

बोध प्रश्न 2

1. आदिकालीन काव्य पद्धति का उल्लेख कीजिए।
2. आदिकालीन काव्यों में कथात्मकता का उल्लेख कीजिए।
3. आदिकालीन हिंदी काव्य की कथा पर प्रकाश डालिए।

7.5 आदिकालीन काव्य : अभिव्यंजना शिल्प

अब तक आप यह जान ही चुके हैं कि अपभ्रंश में लिखा जाने वाला काव्य हिंदी में लिखित काव्य की पूर्वपीठिका के रूप में आपके सामने आता है। हिंदी भाषा को अपनाते हुए अपनी प्रकृति के अनुसार विकसित किया गया मौलिक रूप भाषागत गहराइयों में जा नहीं पाया और न आवश्यकता ही हुई। आप इतना अवश्य जान लीजिए कि अपभ्रंश और हिंदी-दोनों भाषाओं में बहुत सा साम्य और वैषम्य रहते हुए इनमें लिखित काव्य में अधिकांशतः साम्य है।

7.5.1 काव्य रूप वैशिष्ट्य

अपभ्रंश साहित्य के अंतर्गत यह बात आपके लिए ध्यान देने योग्य यह है कि रीतिकालीन अतिशयता और उहात्मक विरहवर्णन पर चर्चा के समय फारसी भाषा का प्रभाव माना जाता है, किन्तु यह वास्तविकता है की भारतीय काव्य की मूल आत्मा की आंतरिक भावधारा के मूल में अपभ्रंश भाषा के काव्य को हम विस्मृत कर जाते है।

अपभ्रंश भाषा के काव्य रूपों के सम्बन्ध में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का कथन विचारणीय है जिसमें वे कहते हैं कि , वस्तुत:छन्द, काव्यरूप, वक्तव्य, वस्तु, कवि रूढियां और परम्पराओं की दृष्टि यह साहित्य अपभ्रंश साहित्य का बढ़ावा है। (हिंदी साहित्य का आदिकाल, पृ०67)। लेकिन इस कथन में परिवर्तन अनिवार्य प्रतीत होता है और वह भी ये कि आचार्य के विचारों में आगत, वक्तव्य, वस्तु या भाव-धारा के स्थान पर काव्य रूपों की बात की जानी चाहिए। अपभ्रंश काव्यधारा में रासों गेय रूपक के वाक्यरूप के अतिरिक्त फागु, चांचरी, विलास, चरिउ, आदि भी बहुत महत्वपूर्ण हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस संबंध में कहा है कि लिखने वालों की संख्या कम थी, क्योंकि लड़ाई भी जाति विशेष का पेशा मान ली गई थी। देश रक्षा के लिए या धर्मरक्षा के लिए समूची जनता के सन्नद्ध हो जाने का विचार ही नहीं उठता था। लोग क्रमश:जातियों और उपजातियों, सम्प्रदायों और उप-सम्प्रदायों में विभक्त होते जा रहे थे। लड़ने वाली जाति के लिए सचमुच चैन से रहना असंभव हो गया था। निरंतर युद्ध के लिए प्रोत्तसाहित करने को भी एक वर्ग आवश्यक हो गया था। चारण इसी श्रेणी के लोग थे। इनका कार्य ही था हर प्रसंग में आश्रयदाता के युद्धोन्माद को उत्पन्न कर देने वाली घटना- योजना का अविष्कार। (हिंदीसाहित्य की भूमिका)

7.5.2 रस विवेचन

आदिकाल में वीरगाथाओं में वीर और श्रृंगार रस का अद्भुत सम्मिश्रण हुआ है। तद्युगीन काव्य में वीररस का सुनहरा परिपाक हुआ है । आप तद्युगीन परिस्थितियों में स्वयं अनुभव कर सकेंगे कि उस काल में युद्ध ही एकमात्र जीवन ध्येय था। चाहे सत्ता का विस्तार हो या अपनी दृष्टि में चढ़ी नायिका की प्रगति अथवा अपने आश्रय में अधीन छोटे राजाओं में अपनी प्रभुत्व, वीरता और शौर्य का प्रभाव जमाए रखने के लिए युद्ध ही एकमात्र साधन रह गया था। इस वातावरण में आबाल-वृद्ध

में युद्ध के लिए अदम्य उत्साह बना हुआ था। आल्हा (परमाल रासो) जैसे लोककाव्य में कवि कहता है –

बारह बरस लैं कूकर जिए और तेरह लौ जिये सियार।

बरस अठारह छत्री जीवै आगे जीवन को धिक्कार।।

यानी युद्ध ही जीवन का एक मात्र ध्येय रह गया था। आप यहाँ यह भी देखेंगे कि युद्ध मात्र सत्ता विस्तार या क्षत्रिय जीवन सामर्थ्य का उद्देश्य भर नहीं था, बल्कि इस प्रकार के युद्धों के मूल में चारण या राज्याश्रित कवियों ने नारी की कल्पना की है और जब नारी काव्य का केन्द्र बिन्दु हो तो निश्चित ही श्रृंगाररस का आत्मबल भी होगा ही। यही कारण हैं कि आदिकालीन काव्यों में अधिसंख्य रूप में श्रृंगार रस का निरूपण मिलता है। यदि काव्य रूप की चर्चा की जाए तो रासो ऐसे काव्य ग्रंथ के रूप में हमारे सामने आते हैं जिनमें श्रृंगार रस निरूपण ही हुआ है। इस कालखण्ड के काव्य के मूल में नारी लिप्सा ही युद्ध का कारण बनती दिखाई देती है तथा एक प्रकार के प्रेमोन्माद की अभिव्यक्ति इस प्रकार के काव्यों में दिखाई पड़ती है। इस प्रेमाभिव्यक्ति में न तो किसी प्रकार की उदात्तता है और न राष्ट्रीयता का सहज उल्लास जिसके कारण युद्ध की संभावना देखी जा सके।

वीर काव्यधारा के साथ श्रृंगार रस के चित्रण की दो प्रमुख स्थितियां उपलब्ध होती है- संयोग श्रृंगार और वियोग श्रृंगार। दूसरे में जहाँ प्रकृति का सान्निध्य लेकर षड्ऋतु वर्णन या बारहमासा द्वारा विरह व्यंजना की काव्य शास्त्रीय परंपरा का अनुपालन आदिकालीन कवियों में मिलता है, वहीं संयोग श्रृंगार में नायिका का नख-शिख एवं रति सुख चित्रण किया गया है। बसंत-विलास में इसी प्रकार के वर्णनों की बहुलता है। आदिकालीन काव्यों में वीर और श्रृंगार रस निरूपण के इतर द्वितीय वरीयता में शांत एवं हास्य रस को माना जा सकता है . शांत एवं हास्य रस का परिपाक अपभ्रंश और हिंदी भाषा में लिखित काव्यों में उपलब्ध होता है। आपको आचर्श्य होगा कि अधिसंख्य जैन चरितों (अपभ्रंश में उपलब्ध) में जहाँ शांत रस का प्रतिपादन हुआ है, वहीं हास्य रस का भी प्रतिपादन इन रासो काव्यों में उपलब्ध है। इस दृष्टि से परवर्ती जैन रासों के रूप में अंकिड़ रासों, ऊदर रासो, छछूँदर रासों आदि आ सकते हैं।

7.5.3 अलंकार विधान

आदिकालीन काव्य सर्जना में कवियों ने काव्यशास्त्र की प्रचलित परम्परा का अनुगमन करते हुए **उक्तव्यक्ति प्रकरण** कथित दिशा-निर्देशों को स्वीकार किया है। इसीलिए आदिकाल के तथा कथित वीरगाथात्मक रासो काव्यों अथवा जैन मुनियों द्वारा रचित चरित (चरिउ) काव्यों में सर्वाधिक एवं सटीक रूप में अलंकारों का प्रयोग मिलता है। आप यह जान पायेंगे कि इस कालखण्ड के कवियों ने कहीं भी अलंकारों का प्रयोग वस्तु तथा रूप की तीव्र व्यंजना बहुत ही कलात्मक रूप से की है तथा आप यह भी पायेंगे कि आदिकालीन कृतियों में प्राय: सभी पारंपरिक अलंकार विद्यमान हैं . वास्तव में इन अंलकारों की आवश्यकता इन कवियों द्वारा कथित अत्युक्ति एवं

अतिश्योक्ति के लिए रही है। तभी तो रासोकार चंदबरदाई रूपकातिश्योक्ति अलंकार का प्रयोग इस रूप में करते हैं –

मनहुं कला ससिमान, कला सोलह सो बन्निय।।

बाल बसे ससि ता समीप, अम्रित रस पिन्निय।।

राजकुमारी पदमावती के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए महाकवि चंद बरदाई कहते हैं कि पदमावती का सौन्दर्य देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो चंद्रमा अपनी सोलह कलाओं से युक्त हो। बाल्यावस्था में ही उसके अपूर्व सौन्दर्य को देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो चंद्रमा ने उसी अमृत रस का पान किया है अर्थात सौन्दर्य प्राप्त किया है। सादृश्य विधान का एक चित्र ढोलामारू रा दूहा में दृष्टव्य है –

ढाढी एक सन्देस ड़उ , प्रीतम कहियो जाय ।

सा धनि जलि कुइला गई, भसम ढूढसी आय ।।

अनुप्रास भी छटा भी देख सकते हैं आप –

बज्जिय घोर निसान राम चौहान चहुदिसि।

सकल सट सामंत समर बल जंत्र तंत्र तिसि।।

उदाहरण अलंकार का एक रूप सरहपा करते हैं –

आगम वेअ पुरोहि, पंडिअ भाषा वहन्ति।

पक्क-सिरीफले सलिअ जिम, बहेरीअ भमन्ति।।

अर्थात आगम, वेद पुराण को ही सब कुछ मानकर विद्वतजन उन्हें ढोते फिरते हैं जिस प्रकार श्री फल के बाहर ही भौरें घूमते हैं –

उपमालंकार दृष्टव्य है –

गय मत है चंत कुसंह जो अष्टिई हसंतु।

ऐसा पति दीजिए जो मतवाले निरकुंश हाथियों से हँसता हुआ जा भिड़े।

दूसरा उद्धहरण है –

गति गंगा, मति सरसती, सीता सील घुमाई।

महिला सरहर भारूई अवर न दूजी काइ।।

अर्थात जिसकी पति तनाव की गंगा के समान प्रगतिशील स्वभाव है वैसी श्रेष्ठ महिला मारू ही हो सकती है, दूसरी कोई अन्य नहीं।

या फिर –

आध वदन ससि विहसि देखावलि , आध पियहि निज बाहु।

कछु एक मान बलाहक झांपल , किछुक गरासल राहू।

यानी नायिका ने अपना चेहरा हाथ से छिपा रखा है, उसका चंद्रमुख आधा छिपा हुआ है और आधा दिखाई दे रहा है मानो चन्द्रमा के एक भाग को बादल ने ढँक दिया है और एक भाग को राहु ने।

7.5.4 गेयता एवं छन्द- प्रयोग

उक्त अध्ययन के आधार पर आप संक्षिप्त रूप में यह भली प्रकार समझ चुके हैं कि आदिकाल का अभिव्यंजना शिल्प राजाश्रित कवि कौशल की अभिव्यंजना है, क्योंकि राज दरबार में अपनी पहचान और व्यक्तित्व की छवि-निर्माण की दशा में राजाश्रित कवियों को अपने काव्य-कौशल का चमत्कार दिखाना अनिवार्य था और प्रत्येक दरबारी कवि स्पर्धा के स्तर पर अपनी अभिव्यंजना शक्ति के कौशल पर ध्यान देता था।

अभिव्यंजना कौशल को श्रेष्ठता के लिए जहाँ शास्त्रीय परंपरा का अनुपालन करने की तत्परता कवि कर्म का अंग थी वहीं काव्य के गेय तत्व की सिद्धता भी अनिवार्य थी। इसलिए आदिकाल के कवियों ने गेयता पर विशेष बल दिया। जैन रास काव्य परम्परा की प्रारंभिक स्थिति में रास के प्रदर्शन के स्तर कवि द्वारा उसकी गेयता (उच्चारण शक्ति) के साथ आंगिक संचालन भी अपेक्षित था । आदिकालीन काव्य का जो रूप विकसित हुआ, वह रास परम्परा के अनुरूप ही था। इसलिए आदि काव्य के काव्यरूपों में रास के इतर फागु और चाचरि, दूहा, चरिउ आदि सभी गेय परम्परा का अनुसरण करते हैं । यदि आपको विद्यापति की पदावली के सम्बन्ध में पूछा जाएगा तो सम्भवत: आपका उत्तर-परावली की गेयता ही होगा। पद गायन की परम्परा अतिप्राचीन है। वैदिक ऋतुओं का भी सस्वर गायन किया जाता था। जब प्रश्न आदिकाल के अपभ्रंश या हिंदी काव्य का हो तो भी आपका उत्तर सम्भवत: गेयता ही होगा।

आदिकालीन कथा (चरित) काव्य गीतिकाव्य की श्रेणी में ही आते हैं। फिर वह काव्य चाहे राजा की कीर्ति वर्णन का हो या किसी लोकाश्रित प्रेमगाथा का, उसमें कवि को अपनी गति मेघा का परिचय भरे दरबार में देना होता था। इसलिए इसकी गयेता पर विशेष ध्यान केन्द्रित करना भी अनिवार्य था तो उसके साथ संगीतपरक गहन ज्ञान का अनुभव लेकर राग-रागिनियों का निर्देशन भी। इसका एक कारण यह भी था कि राजा को उस राजश्रित कवि की हस्तलिखित पाण्डुलिपि पढ़ने और समझने का अवसर था और न उसके दरबारियों को इसके लिए अवकाश था। अत: गेयता द्वारा ही कवि अपने कृति की प्रस्तुति प्रभावी ढंग से राज-दरबार में कर सकता था।

यही कारण है कि गेयता की कृति के कारण आदिकाल के विविध काव्य ग्रंथों में लयात्मकता एवं गेय सौन्दर्य का विधान संरचनात्मकता का अंग था। इस दृष्टि से आदि काव्य के रूप में 'पृथ्वीराजरासो' की गणना जहाँ चरित्र काव्य के रूप में की जाती है, वहीं उसे गेयकाव्य की श्रेणी में भी रखा जाता है। उससे पूर्व संदेशरासक में भी, नागकुमार चरित, करकण्डु चरित में भी गेयता के सूत्र उपलब्ध हैं। रासक या रास,जैन रासो, परवली, फागु, चांचर आदि में गेयता विद्यमान है। उनमें से कुछ कृतियों को नर्तक समूह द्वारा लय-तालबद्ध नृत्य के साथ प्रस्तुत भी किया जा सकता है। यह गेय परंपरा पूर्व में सिद्धनाथ कवियों में भी विद्यमान थी। परवर्ती कवियों एवं हिंदी साहित्य के परवर्ती काल खण्डों की काव्य कृतियों में देखा जा सकता है।

पुष्पदंत रचित महापुराण के एक उद्धरण में गेयता द्रष्टव्य है –

घूलि घूसरेवा वर मुक्क सरेणतिणा मुरारिणा

कील रस वसेण गोपालय-गावी हियय हरिणा

रंग तेण रमत रमंते , भविष्य मंथ घरिउ भमंतअणंते।

बौद्ध-सिद्धकाव्य के रूप में सरहपा के काव्य में गेयता दृष्टव्य है

जहि मण पवन ण संचरइ, रवि ससि नाहीपवेश।

तहि बढ़ चित्त विसाम कसु , सरहे कंहिउ उएस ।

हेमचंद्र के व्याकरण में आए काव्य के उदाहरणों में यही गेयता आप पाएंगे-

भल्ला हुआ जु मारिया बहिणि म्हारा कंतु।

लज्येतं तु वयंसि अहु जइ भग्ग घर एंतु।।

संदेश रासक में भी वही गेयता उपलब्ध है –

संदेसऽउ सवित्थरउ पर मइ कहणुं न जाइ

जो फालंगुलि मूँटउउ तो बाहड़ी समाइ।।

बोध प्रश्न 3

1. आदिकालीन हिंदी काव्य का अभिव्यंजन पक्ष क्या है ?
2. आदिकाव्य का रस विवेचन प्रस्तुत कीजिए।
3. आदिकाव्य का अलंकार-विधान स्पष्ट कीजिए।
4. आदिकाव्य की गेयता एवं दन्दविधान का उल्लेख कीजिए।

छन्दविधान - अभी तक आप आदिकालीन काव्य के अभिव्यंजना शिल्प के विविध पक्षों का परिचय पा चुके है। जब आदिकालीन काव्य में गेयता है, लय है, रागात्मकता है , शास्त्रीय स्तर पर काव्य शास्त्र में पूर्व निर्धारित और **वर्ण रत्नाकर** एवं **उक्ति व्यक्ति प्रकरण** प्रथित परंपराओं का पालन भी कवि कर्म की अनिवार्यता में आप देख चुके हैं तो हम आपको आदिकालीन काव्यों में प्रयुक्त छन्दों का संक्षिप्त रूप में उल्लेख करेंगे।

आपको यह जानकार आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि अपभ्रंश काव्यों में मात्रिक छन्दों का जो सूत्रपात हुआ था, उसने तुकांए छंदों की प्रथा का प्रचलन हुआ और आजकल हिंदी काव्य का कसौटी बना है। अपभ्रंश में प्राय: पद्धति छन्द का प्रयोग चरित काव्यों में किया जाता रहा है तथा एकरसता तोड़ने के लिए बीच में दूसरे छन्दों दोहा, रास, कब्ब, चौपाई जैसे-जैसे बड़े-बड़े छन्द अपनाए गए। ठीक यही क्रम हिंदी के आदिकाव्यों में अपनाया गया है और उनमें चौपाई प्रबंध काव्य के लिए और सवैया , छप्पय , कुण्डलिया आदि का प्रयोग परवर्ती काल तक होता रहा है। इनमें कुछ अन्य छन्द नामों को भी सम्मिलित किया जा सकता है जिनमें प्रमुख रूप से त्राटक (तोटक) गाथा, आर्या, सटटक आदि छंद है जो काव्य की कलात्मकता में वृद्धि करने वाले छन्द हैं ।आदिकाल के वीरगाथात्मक चरित (कथा) काव्यों में अलंकारों का प्रचुर एवं सटीक उपयोग किया गया है। वहीं छन्द का भी व्यापक और बहुल प्रयोग किया गया है। यह छन्दगत बहुलता की संक्षिप्त सूची के स्तर पर इतना ही कहा जा सकता है कि आदिकालीन काव्यों में दूहा, चौपाई , गाहा (गाथा), रोला , छप्पय , कुडलियां, रासा आदि छन्दों का प्रमुखता से प्रयोग किया गया है। जब काव्य में गेयता, लयात्मकता आदि सन्निहित है तो उसकी गतिशीलता का निर्धारक छन्द प्रयोग अनिवार्य हो जाता है। छंद परिवर्तन भी काव्य में कौशल-वृद्धि के साथ कवि विशेष की सर्जनात्मकता का प्रतीक होता है। पृथ्वीराजरासो, भरतेश्वर बाहुबलि रास, उपदेश रसायन रास, चंदनबालारास, हमीररासो ,ढोला मारू रा दूहा, बसंत विलास आदि काव्यों में छन्दों के विविध प्रकार के प्रयोग उपलब्ध है।

7.6 सारांश

आप इस इकाई का अध्ययन करके यह अवश्य समझ होंगे कि अपभ्रंश में लिखित काव्य हिंदी में लिखे जाने वाले आदिकालीन काव्यों की पूर्व पीठिका के रूप में हमारे सामने आते हैं, यही कारण है कि चाहे वे चरित काव्य है या भक्तिकाव्य अथवा श्रृंगार काव्य सभी में कथात्मक स्वरूप, कथा अभिप्रायों के प्रयोग काव्य पद्धति द्वारा आदिकालीन काव्यों के काव्य रूपों, रस-विवेचन, अलंकार विधान, गेयता और छन्द प्रयोग आदि में अपभ्रंश में लिखित पूर्व काव्यों का अनुसरणमात्र ही नहीं रहा है, परन्तु अभिव्यंजना शिल्प के विविध आयाम अपभ्रंश काव्यों के समानांतर उपलब्ध होते हैं।

7.7 शब्दावली

1.	अभिव्यंजना शिल्प	:	अभिव्यक्ति का ढंग
2.	चित्तवृत्ति	:	मन के भाव
3.	चरित काव्य	:	ऐसा काव्य जिसमें किसी व्यक्ति का चित्रण ही मुख्य विषय हो।
4.	पदावली	:	पद शैली में रचित काव्य
5.	रासाबंध	:	रास पद्धति में काव्य रचना के लिए प्रयुक्त छन्द विशेष

7.8 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.	हजारी प्रसाद द्विवेदी	:	हमारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली भाग 2,3
2.	रामचंद्र शुक्ल	:	हिंदी साहित्य का इतिहास
3.	हमारी प्रसाद द्विवेदी	:	हिंदी साहित्य की भूमिका
4.	विजय कुलश्रेष्ठ अनीता चौधरी	:	हिंदी साहित्य का इतिहास
5.	शिव कुमार शर्मा	:	हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियॉ

7.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. हिंदी साहित्य के आदिकालीन काव्य का समीक्षात्मक विवेचन कीजिए।
2. आदिकालीन काव्य की पद्धतियों का निरूपण कीजिए तथा आदिकालीन काव्य के अभिव्यंजना शिल्प का विवेचन प्रस्तुत कीजिए

इकाई 8 हिंदी साहित्य की आदिकालीन कविता का भाषिक विवेचन

8.1 प्रस्तावना
8.2 उद्देश्य
8.3 अपभंश भाषा काव्य-पृष्ठभूमि
8.3.1 अपभ्रंश काव्य-धारा का स्वरूप
8.3.2 अपभ्रंश और हिंदी साहित्य का अंत: सम्बन्ध
8.4 आदिकालीन काव्य : भाषा का स्वरूप
8.4.1 अपभ्रंश और देश भाषा
8.4.2 अपभ्रंश, अवहट्ठ और पुरानी हिंदी
8.4.3 अपभ्रंश भाषा का काव्य
8.5 विशिष्ट आदिकालीन रचनाएं और उनकी भाषा
8.6 सारांश
8.7 शब्दावली
8.8 उपयोगी पाठ्य सामग्री
8.9 निबंधात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

अब तक के अध्ययन के उपरांत आप यह जान चुके हैं कि आदिकाल के नामकरण के अन्तर्गत आनेवाले काव्य का स्वरूप संक्रमणकालीन राजनीतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं साहित्यिक परिस्थितियों का सर्जनात्मक परिणाम सामने लाता है जिसका स्रोत पूर्व पीठिका के रूप से अपभ्रंश भाषा है। आज यह सर्वमान्य हो चुका है कि हिंदी भाषा का विकास तत्कालीन प्रचलित अपभ्रंश भाषा से हुआ है।आप यह अध्ययन के उपरांत पा चुके हैं कि इस कालखण्ड में भाषा और साहित्यिक प्रवृत्तियों के विकास का स्वरूप भी संक्रमण की ही देन है क्योंकि रासो काव्य परंपरा के साथ ही रासेतर काव्य परंपरा की कृतियाँ भी इस कालखण्ड की उपलब्धियों में गणनीय है।

प्रस्तुत इकाई में आप जानेंगे की हिन्दी साहित्य के प्रथम काल-खण्ड आदिकाल में लिखित काव्य की भाषिक-प्रकृति संक्रमणशील एवं बहु-भाषिक थी . भाषा के आधार पर यह काल-खण्ड अपना विशेष महत्त्व रखता है . पुरानी हिन्दी,अपभ्रंश ,विभिन्न प्राकृतों के मध्य साहित्य के क्षेत्र में संक्रमण की स्थिति दिखाई देती है. प्रस्तुत इकाई में आप आदिकाल की भाषिक-प्रकृति का वुभिन्न विद्वानों द्वारा किये गए विवेचन का अध्ययन करेंगे.

8.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करते हुए आप जानेंगे कि –

- आदिकालीन काव्य रचनाओं की पूर्व पीठिका कैसी थी ?
- अपभ्रंश और हिंदी भाषा के अंत: संबंध कैसे थे ?
- तत्कालीन अपभ्रंश तथा अन्य प्रचलित भाषाओं का स्वरूप क्या था ?
- अपभ्रंश भाषा के प्रसिद्ध काव्यकार और उनके भाषा-प्रयोग का रूप था।
- आदिकालीन काव्य की भाषा का स्वरूप क्या था ?

8.3 अप्रभंश भाषा काव्य-पृष्ठभूमि

आप यह तो पहले ही जान चुके हैं कि हिंदी साहित्य और उसके इतिहास का आरंभ दसवीं शती से माना जाता है और कुछ विद्वान – चंद्रधर शर्मा गुलेरी और राहुल सांकृत्यायन उसे सातवीं-आठवीं शती से मानते हैं। इसका कारण यह है कि वे अपभ्रंश साहित्य की गणना भी हिंदी साहित्य के अंतर्गत ही करना चाहते हैं और अपभ्रंश के कवि स्वयंभू तथा पुष्पदंत को

हिंदी का आरंभिक कवि मानते हैं। यह अपभ्रंश भाषा भारतीय आर्य भाषा के विकास का परिणाम है जिसे हम निम्मांकित रूप में देख सकते हैं –

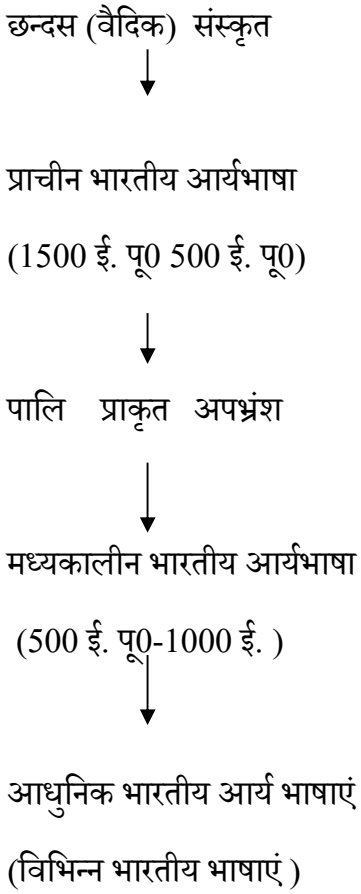

वैदिक-संस्कृत जैसी प्राचीन भारतीय आर्यभाषाओं से ही पालि, प्राकृत और अपभ्रंश जैसी मध्ययुगीन भारतीय भाषाओं का विकास हुआ। अपभ्रंश ही आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं की की जननी कही जा सकती है। हिंदी भी उन्हीं में से एक है, जिसे अपभ्रंश की परिनिष्ठित साहित्य सर्जना का दाय मिला है। आपको यह जानकर आश्चर्य होना स्वाभाविक है कि आठवीं-नवीं शती में अपभ्रंश साहित्यिक और परिनिष्ठित भाषा के रूप में राष्ट्रकूट राजाओं (बंगाल के पाल और मान्यखेट के) की शक्ति एवं संरक्षण का लाभ अपभ्रंश साहित्य को मिला। सरहपा, कण्हपा आदि सिद्धों, पुष्पदंत और स्वयंभू आदि भी राष्ट्रकूटों के संरक्षण में अपनी साहित्य-सर्जना में निमग्न रहे। आगे चलकर सोलंकी ,चालुक्य ने अपभ्रंश काव्य को प्रोत्साहित किया। अपभ्रंश को हिंदी साहित्य में सम्मिलित करने के विषय में विद्वान एकमत नहीं है। कुछ विद्वान अपभ्रंश की ही पुरानी हिंदी कहते हैं। आप गुलेरी और राहुल के मन से

परिचित हो चुके हैं फिर भी विवाद के लिए अवकाश तो हैं। आचार्य शुक्ल उसे प्राकृताभास हिंदी कहते हैं तथा पं.चंद्रधर शर्मा गुलेरी उसे पुरानी हिंदी का नाम देते हैं।

8.3.1 अपभ्रंश काव्य-धारा का स्वरूप

अपभ्रंश भाषा के विषय में इतना आप इतना तो जान चुके हैं कि वह हिंदी के आदिकालीन काव्य की पूर्व पीठिका बनी । आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने जिस साहित्य को धार्मिक और संप्रदायपरक साहित्य मानकर आदिकाल के साहित्य के अन्तर्गत स्वीकार नहीं किया था, वही सिद्धों, नाथों और जैन संतों का साहित्य अपनी साहित्यिक मान्यताओं में भी परिगणित हो रहा है और वह आदिकाल की काव्य सामग्री के रूप में अपभ्रंश भाषा में ही लिखा गया था। संक्षिप्त में इसका उल्लेख किया जा सकता है –

सिद्ध साहित्य रूप- सिद्ध साहित्य बौद्ध धर्म की परम्परा का लिखित साहित्य है और वह एक ऐसे धार्मिक आन्दोलन के रूप में तांत्रिक क्रियाओं में आस्था तथा मंत्रों की सिद्धि के प्रयास से सिद्धों द्वारा जनभाषा में लिखित वास्तव में बौद्ध धर्म के वज्रयान के प्रचार करने हेतु रचा गया। यह सिद्ध साहित्य 'दोहाकोश' और 'चर्यापद' के रूप में उपलब्ध है। इस सिद्ध साहित्य को अर्धमागधी अपभ्रंश के निकट माना जाता है जो अपभ्रंश और हिंदी के संधिकाल की भाषा कही जा सकती है ।

नाथ साहित्य रूप –

नाथ संप्रदाय को सिद्धों की परंपरा का ही विकसित रूप माना जाता है। नाथ साहित्य के प्रवर्त्तक गोरखनाथ माने जाते हैं। इस संप्रदाय के रचनाकारों ने सिद्ध साहित्य को अपभ्रंश जैसी जनभाषा में ही अधिक पल्लवित किया था लेकिन उसे सिद्ध साधना से अलग और शैव मत के सिद्धान्तों के स्तर पर स्वीकार किया गया है और शिव को आदिनाथ कहा जाता है। इनके मार्ग में संयम तथा सदाचार पर बल दिया गया है। नाथ संप्रदाय ने निवृत्ति मार्ग पर बल दिया है और गुरू को मार्गदर्शक माना है। शिष्य विरागी होकर प्राण-साधना से कुंडलिनी जागृत कर मन को अन्तर्मुखी बनाकर भीतर ही परमानंद प्राप्त करता है। नाथ पंथियों का काव्य सिद्ध साहित्य की ही भांति सिद्धान्त प्रति पादनार्थ उपलब्ध होता है। इसमें प्रतीकात्मक रूप में सूर्य और चंद के योग (मिलन) को हठयोग कहा जाता है। योगियों तत्कालीन प्रचलित अपभ्रंश में ही अपनी रचनाएं प्रस्तुत की है, यथा –

जाणि के अजाणि लेय बात तूं ले पिछाणि।
चेले हो इआं लाभ होदूगा गुरू होइआं हाणि।।

जैन साहित्य –

आदिकाल के काव्य खण्ड में आचार्य शुक्ल द्वारा अपनी गणना में अमान्य किया गया तीसरा धर्म साहित्य जैन-संतों द्वारा लिखित था लेकिन समग्र साहित्य और धर्माविषयक सिद्धान्तों के रूप में नहीं लिखा गया। सामान्य जनता तक धर्म प्रचारर्थ साहित्य कथापरक और चरित्र व्याख्या के रूप में भी उपलब्ध है। जैन मुनियों ने अपने धर्म का प्रचार लोकभाषा (अपभ्रंश) में किया था। इस प्रकार की रचनाएं रास, फागु, चरिउ जैसी विविध काव्यरूपों में प्राप्त होती हैं। स्वयंभू रचित पउम चरिउ और अरिष्टनेमि चरित और पुष्पदंत रचित णायकुमार चरित और त्रिसाटिव्महापुराण है यानी तेईस तीर्थकारों का महापुराण इन कोटियों की रचनाये हैं। जैन काव्यों में इस प्रकार का लेखन जन या लोकभाषा यानी अपभ्रंश में किया गया था।

8.3.2 अपभ्रंश और हिंदी साहित्य का अंत: सम्बन्ध

हिंदी के प्रारंभिक काल का साहित्य विविधोन्मुखी और समृद्ध है। आप अपभ्रंश काव्य के विषय में इस इकाई में बहुत कुछ जान चुके हैं कि जिन विषयों को कवि ने अपनी कविता का माध्यम बनाया है, उनमें पौराणिक कथाएं (रामकाव्य, कृष्ण काव्य, तीर्थंकरों का चरित्राख्यान), धार्मिक रूढियों और बाह्याडम्बरों का विरोध ऐतिहासिक या लोकनायक का चरित्र (चरित्र काव्य), शौर्य और श्रृंगार प्रमुख है। इस परंपरा को हिंदी काव्य परंपरा ने और आगे बढ़ाया। हिंदी में वीरगाथात्मक काव्य लिखे गए। जिनमें अपभ्रंश के चरित्रकाव्यों की झलक मिलती है। इसी प्रकार सिद्धनाथ कवियों की वाणी संतकाव्य की पूर्व पीठिका ज्ञात होती है। हिंदी के काव्य वीसलदेव रासो और ढोला मारू रा दूहा, संदेश रासक की परंपरा में ही आते हैं। आप यह भी जान चुके हैं कि अपभ्रंश जहाँ हिदीं की जननी है, वही साहित्य सर्जना परक विविध विधाओं की प्रेरक भी है। जहाँ अपभ्रंश का परिनिष्ठित साहित्यिक स्वरूप विविध रचनाओं के स्तर पर हिंदी का मार्गदर्शक है, वहीं उसकी प्रकारन्तर से साहित्य बनती लोककथा ने भी हिंदी साहित्य-सर्जना के लिए कवियों को नई भूमि प्रदान की है।

अब आपके समक्ष यह रखना भी अधिक उपयुक्त होगा कि हिंदी भाषा का उद्गम लोकभाषा अपभ्रंश से ही हुआ है, जिसे विद्यापति तो देसिल बयना का नाम दे चुके थे । कई विद्वानों ने भौगोलिक आधार पर भी अपभ्रंश के कई भेद किए है जैसे मागधी, अर्ध मागधी कालान्तर में शौरसेनी जिसके भी पूर्वी एवं पश्चिमी भेद किए गए हैं। फिर महाराष्ट्री, पैशाची, ब्राचड़ आदि भी है। हिंदी का विकास शौरसेनी अपभ्रंश से माना जाता है। अब आप भली प्रकार समझ गए हैं कि अपभ्रंश और हिंदी के अंत: संबंध बहुत गहरे हैं।

बोधप्रश्न

1 . आदिकाल की पूर्व-पीठिका पर प्रकाश डालिए।

2 .अपभ्रंश भाषा काव्य की पृष्ठभूमि बताइए।

3 .अपभ्रंश काव्यधारा का स्वरूप स्पष्ट कीजिए।

4 .अपभ्रंश एवं हिंदी साहित्य के अन्त:संबंध स्पष्ट कीजिए।

8.4 आदिकालीन काव्य : भाषा का स्वरूप

अभी तक आप अपभ्रंश और हिंदी साहित्य के अन्त:संबंधों के विषय में अध्ययन कर रहे थे। यहाँ हम आपको आदिकालीन काव्य की भाषा के स्वरूप के संबंध में यह स्मरण दिलाते हैं कि अभी हम गत अनुच्छेद के प्रारंभ में यह उल्लेख कर चुके हैं कि आदिकालीन काव्य की भाषा की पूर्व पीठिका के लिए अपभ्रंश भाषा ही एकमात्र आधारभूमि रही है। अब अग्रिम अनुच्छोदों के अंतर्गत आदिकालीन काव्य की भाषा के संबंध में कुछ बताया जा रहा है –

8.4.1 अपभ्रंश और देश भाषा

भाषा वैज्ञानिक आधार पर आपको यह बता दें कि अपभ्रंश भाषा मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा परिवार (500 ई. पू0 से 1000 ई.) की भाषा है। संस्कृत आचार्यों तथा अपभ्रंश भाषा कवियों ने अपभ्रंश के सुप्रसिद्ध कवि स्वयंभू और पुष्पदंत ने अपनी भाषा को लोक (जन) भाषा या देश भाषा कहा है वस्तुत: प्रत्येक युग में एक साहित्यिक भाषा होती है और उसके साथ अनेक लोकभाषाएं होती है। इन्हीं लोक भाषाओं से साहित्यिक भाषा विकसित होती है और अनेक लोक भाषओं से साहित्यिक भाषा जीवन का रस प्राप्त करती है और इस प्रकार यह जीवन्त बनी रहती है। जब साहित्यिक भाषा जनता से दूर हटती है और केवल पंडितों की भाषा रह जाती है, तब वह भाषा मृत हो जाती है और उसका स्थान कोई लोकभाषा ले लेती है। कालान्तर में यही लोकभाषा साहित्यिक भाषा बन जाती है तथा भाषा के विकास का यह क्रम लगातार चलता रहता है। आप जान चुके हैं कि किस प्रकार छन्दस (वैदिक) से संस्कृत, संस्कृत से पालि, पालि से प्राकृत, प्राकृत से अपभ्रंश भाषाओं का विकास हुआ है .इसी क्रम में वैदिक भाषा छन्दस , छन्दस से संस्कृत, फिर पालि, प्राकृत और अपभ्रंश की विकास यात्रा पूरी हुई और अपभ्रंश साहित्यिक भाषा बन गई तो लोक या जनभाषा में साहित्य रचना आरंभ हुई जो निश्चित रूप से हिंदी का प्रथम रूप था।

आपके मन एक प्रश्न उठ सकता है कि – अपभ्रंश को देश भाषा कहा जाए या नहीं। यह बहुत ही विवादास्पद है। कुछ विद्वानों – पिशेल, ग्रियर्सन, सुनीतिकुमार चटर्जी आदि अपभ्रंश को देशभाषा मानते हैं जबकि याकोबी, कीथ, ज्यूल ब्लाख आदि विद्वान उसे देशभाषा नहीं स्वीकार करते। लेकिन देशभाषा न मानने वाले वे इतना अवश्य स्वीकार करते हैं कि अपभ्रंश में देशभाषा के अनिवार्य तत्व उपलब्ध हैं । निष्कर्ष रूप में यह कहना उचित होगा कि साहित्यिक प्राकृत का देशी भाषाओं के साथ संपर्क हुआ और इस प्रकार भारतीय आर्यभाषा की अपभ्रंश अवस्था आरम्भ होती है। इस संबंध में आचार्य शुक्ल का मत दृष्टव्य है ''जबतक भाषा बोलचाल में थी तब तक वह भाषा या देशभाषा कहलाती रही जब वह भी साहित्य की भाषा हो गई तब उसके लिए अपभ्रंश शब्द का व्यवहार होने लगा। ('हिंदी साहित्य का इतिहास', पृ0 7)

8.4.2 अपभ्रंश, अवहट्ठ और पुरानी हिंदी

इकाई के इस भाग में आप जानेंगे की अपभ्रंश, अवहट्ठ या पुरानी हिंदी क्या है और उनमें क्या अंतर है ? यद्यपि आप देख ही चुके हैं कि हिंदी साहित्य में अपभ्रंश को सम्मिलित कर पाने में विद्वानों में मत-भिन्नता रही है। हिंदी साहित्य में अपभ्रंश को सम्मिलित करने का प्रश्न भी इससे ही संबंधित है। आप इतना तो जान ही चुके हैं कि अपभ्रंश पर प्राकृत का यथेष्ट प्रभाव था . इसमें भी दो मत नहीं है कि इसी प्रकार का प्रभाव संस्कृत भाषा पर छन्दस (वैदिक) का भी था। होता भी यही है कि जब कोई भी प्रचलित भाषा व्याकरण बद्ध होकर परिनिष्ठित बन रही होती है तो एक बोल-चाल की भाषा सामान्य जन के व्यवहार में आती है और कालान्तर में जब उसमें भी परिनिष्ठितिकरण आरंभ होता है तो भाषा साहित्य की भाषा बन जाती है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपभ्रंश को 'प्राकृताभास हिंदी' कहा था, पुरानी हिंदी नहीं कहा तथा उन्होंने सिद्धों की उस भाषा को पुरानी हिंदी के रूप में स्वीकार किया था, जिसमें देशभाषा का पुट था। इसका अर्थ यह हुआ कि आचार्य शुक्ल के अनुसार देशभाषा मिश्रित अपभ्रंश को वे पुरानी हिंदी स्वीकार करते हैं, जब कि चंद्रधर शर्मा गुलेरी की मान्यता है कि विक्रम की सातवीं शती से ग्यारहवी शती तक अपभ्रंश की प्रधानता रही और फिर वह पुरानी हिंदी में परिणत हो गई। इस कालखण्ड में (दसवीं शती के आस-पास) तत्सम शब्द बहुल लोकभाषा में मिलती है, जिसे पुरानी हिंदी अपभ्रंश अथवा का ही विकसित रूप माना जा सकता है। लेकिन नवीं , दसवीं शती तक अपभ्रंश भाषा की प्रधानता रही, जिस पर प्राकृत शब्दों का स्पष्ट प्रभाव आप देख सकते हैं उसे ही अपभ्रंश कहा जाता रहा है।आप यह भी देख सकते हैं कि नवी-दसवीं शती के बाद प्राकृत शब्दों से मुक्त होने की प्रवृत्ति बढ़ी और तत्सम शब्दों को ग्रहण किया जाने लगा। यही पुरानी हिंदी है।

अब आपके सामने प्रश्न उठ सकता है कि 'अवहट्ठ' क्या है ? आप यह देख ही चुके हैं कि प्राकृत और अपभ्रंश ग्रंथों में अपभ्रंश के कई नामों में से एक 'अवहट्ठ' भी है। मूलत: अवहट्ठ अपभ्रंश का पर्याय है . विद्यापति अपनी कीर्तिलता और कीर्तिपताका को 'अवहट्ठ' ही कहते हैं। देसिल बयना सब जन मिट्ठा तें तैंसन जप्पओं अवहट्ठा'(यानी बोलचाल की भाषा सबको मीठी (मधुर) लगती है। अत: मैं वैसे ही अवहट्ठ में अपनी कविता करता हूँ) इसका सीधा सा अर्थ आपको भी स्पष्ट हो जाता है कि देशी भाषा मिश्रित परवर्ती अपभ्रंश को अवहट्ठ कहा गया है। यही परवर्ती अपभ्रंश अददहमाण (अब्दुर्रहमान) ज्योतिरीश्वर ठाकुर आदि ने प्रयोग में ली है। अत: आप पूरी तरह समझ सकते हैं कि अवहट्ठ और पुरानी हिंदी में कोई अन्तर नहीं है। दोनों ही देशी भाषा मिश्रित अपभ्रंश के पर्याय रूप से प्रयुक्त हैं।

8.4.3 अपभ्रंश भाषा का काव्य

अब तक आप समझ गए होंगे कि आठवीं से चौदहवीं शती तक आदिकालीन काव्य में साहित्य सर्जना की भाषा अपभ्रंश रही है। आपको यह जानकर भी आश्चर्य होगा कि सुंदर दक्षिण को छोड़कर समस्त भारत में इस काल में अपभ्रंश काव्यों की रचना हुई है। अपभ्रंश को साहित्य सर्जना की भाषा के रूप में गरिमा प्रदान करने में स्वयंभू प्रथम कवि माने जाते हैं और फिर पुष्पदंत तथा अन्य कवियों में जोइन्दु, रामसिंह, हेमचंद्र, सोमप्रभ जिनप्रभसूरि, राजशेखर, शालिभद्रसूरि अब्दुलरहमान, सरहपा और कण्हपा आदि उल्लेखनीय हैं। इन्होंने चरितकाव्य, गीतिकाव्य, विरहकाव्य, रहस्य प्रधान काव्य तथा कथाकाव्य लिखे हैं।

आदिकालीन काव्य का भाषा-निरूपण - अब तक के अध्ययन के आधार पर आप इतना तो जान ही चुके हैं कि हिंदी में लिखे जाने वाले काव्यों की पूर्व पीठिका अपभ्रंश भाषा की है। लेकिन अपभ्रंश का साहित्यिक भाषा रूप विकसित होने के अनन्तर तत्कालीन लोक या जन भाषा जो अपभ्रंश का ही विकृत या विकसित रूप थी . यह बोलचाल की भाषा ही आगे पुरानी हिंदी या अवहट्ठ के रूप में विस्तार पाकर हिंदी साहित्य सर्जना की भाषा बनी है। बोल चाल की भाषा ने ही अपनी प्रकृति के अनुरूप अपभ्रंश से दाय तो प्राप्त किया पर कुछ भिन्नता के स्तर पर ही विकास मार्ग अपनाया था।

अब आपके समक्ष हिंदी के आविर्भाव का प्रश्न उभर सकता है तो हम आपसे यह उल्लेख करना चाहेंगे कि यह सर्वमान्य सत्य है कि अपभ्रंश से हिंदी की विभिन्न भाषाओं का विकास हुआ। पर इस विकास क्रम को किसी निर्धारित विधि या वर्ष से प्रतिपादित नहीं किया जा सकता। हिंदी भाषा का उद्भव तेरहवी शती के बाद हुआ माना जाता है, पर अपभ्रंश-संस्कारों से पूर्णत: मुक्ति और स्वतंत्र स्वरूप अर्जित करने में हिंदी को लगभग ढ़ाई सौ वर्ष लगे हैं। आप

जानेंगें कि पन्द्रहवीं शती के प्रारंभ से ही हिंदी अपना एक निजी स्वरूप ग्रहण कर सकी। वस्तुत: उपलब्ध कृत्तियों की भाषा के निरीक्षण से पता चलता है कि बारहवीं शती से ही अपभ्रंश अपनी मूल संशिलष्ट प्रकृति से हटकर विशिष्टताओं की ओर अग्रसर हुई और चौदहवीं शती के अन्त तक भी वे रचनाएं भी हिंदी के आदि रूप का प्रतिनिधित्व करती है, जिनकी भाषा अपभ्रंश के संस्कारों से अनुप्राणित हुई थी। अब अध्ययन निम्नांकित बिन्दुओं के आधार पर करते हैं –

1. भाषा की बहुरूपता - अपभ्रंश भाषा हिंदी की पूर्व पीठिका की बात आप पूरी तरह जान चुके हैं। अपभ्रंश का परिनिष्ठित रूप तत्कालीन समय में विशिष्ट काव्य रचनाओं का मूल केंद्र रहा है लेकिन उस कालखण्ड में परिनिष्ठित अपभ्रंश भाषा के इतर भी तत्कालीन प्रचलित अपभ्रंश अवहट्ठ अथवा पुरानी हिंदी जैसी भाषाओं में भी काव्य रचनाएं की जा रही थी। आचार्य शुक्ल ने केवल बारह ग्रंथों को ही आदिकाल के नामकरण का आधार बनाया था और परवर्ती काल में खोज की गई जो और समग्री आदिकाल के काल खण्ड में प्राप्त हुई है। वह संभवत: आचार्य शुक्ल के दृष्टि-केन्द्र में नहीं थी और यह उनके इतिहास लेखन की सीमा भी थी, पर परवर्ती साहित्येतिहासकार ने उस सामग्री का उपयोग किया है जिन्हें उस काल खण्ड में प्रचलित अपभ्रंश भाषा के अन्य रूपों अवहट्ठ और पुरानी हिंदी अथवा लोकभाषा में उपलब्ध रही है। अत: आदिकाल की काव्य की भाषा की बहुरूपता पर भी ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है। इसका परिचय आज उपलब्ध स्रातों और जैन रासो (कथात्मक) काव्यों के आधार पर अपने महत्व की स्थापना कर सकती है। इसमें दो मत नहीं हो सकते कि साहित्यिक भाषा के सामानांतर लोकभाषाओं की जो अपनी धाराएं प्रवाहित होती हैं वे भी कालान्तर में साहित्यिक भाषा का रूप ले लेती हैं । इसीलिए उस काल की पूर्वापर सीमाओं में भाषा की बहुरूपता देखी जा सकती हैं ।

2 . सिद्धों नाथ काव्य-भाषा - आदिकाल के अंतर्गत आचार्य रामचंद्र शुक्ल एवं परवर्ती साहित्येतिहासकारों ने बौद्ध-सिद्धों और नाथों की विशिष्ट रचनाओं को आधार सामग्री के रूप में सम्मिलित किया है तो उनकी तद्युगीन काव्यभाषा का मूल्यांकन अनावश्यक नहीं समझा जा सकता। अत: आपको सहरपा (8वीं शताब्दी) की चर्यापद-रचनाओं की भाषा का परिचय कराया जा रहा है :-

जइ रागग्गा विअ होइ मुत्ति ता गुणह सिआलह
लोभुपाटणे अत्थि सिद्धि ता जुवई णिअबइ।

काया की कृच्छ साधना इन्हें काम्य नहीं है –

सहजे ए णिच्चल जोण किअ, समरसे णिच मगराअ।
सिद्धो सो पुणि तक्वाणो, रागउ जरा भरणइ भाअ।।

आपको यह जानकर आश्चर्य हो सकता है कि दोहाकोश और चर्चा गीतों की भाषा में अंतर है। दोहाकोश की भाषा प्राचीन आरम्भिक हिंदी है और चर्चापद की भाषा अपभ्रंश/अवहट्ठ है। इसी अवहट्ठ में कीर्तिलता एवं कीर्तिपताका काव्यों की रचना हुई है। सिद्धों के काव्य रूप दोहा चर्यापद ही साखी (साक्षी) और सबदी (कथन) के रूप में रूपांतरित हो गए हैं लेकिन परवर्ती भक्ति साहित्य में इनका प्रयोग तो विस्तार पा गया है पर सिद्धों की तांत्रिक साधना तो लोप हुई है लेकिन उस साधना की शब्दावली का अवशेष प्रयोग कहीं-कहीं मिलता है। नाथ संप्रदाय के प्रवर्तक गोरखनाथ है। उनके जन्म स्थान और मृत्युतिथि आदि का प्रमाण अनुपलब्ध है। गोरख साक्षी (संपादक पीताम्बरदत्तर बड़थ्वाल) में गोरखनाथ की रचनाओं (सबदी) को भाषा आधार प्रमाणिक नहीं माना जा सकता। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा है कि – 'हिंदी में गारखनाथ के नाम से अनेक पद मिलते हैं, उनमें साधना मार्ग की व्याख्या की गई है, पर उनमें योगियों के धार्मिक विश्वास, दार्शनिक मत और नैतिक स्वर नहीं है। (हिंदी साहित्य की भूमिका)

उनकी भाषा का परिचय आपके सामने प्रस्तुत है। पर आप स्वयं ही अनुभव करेंगे गोरखनाथ की भाषा और परवर्ती कबीर की भाषा में अंतर कम है। यहाँ गोरखनाथ की कविता की भाषा का उदाहरण आपके सामने हैं :-

गुरू कीजै गहिला निगुरान रहिला।

गुरू बिन ज्ञान न पाइला रे साईला।।

नाथ बोलै अमृत वाणी।

क्षरिषैसी कम्बल पाणी।।

गाइ पड़खा बांघिल खूँट।

दमाया बाजिल ऊँटा।

यह भाषा पन्द्रहवीं शताब्दी से पूर्व की नहीं मानी जा सकती क्योंकि आप स्वयं ही जान चुके हैं कि ऐसी हिंदी का प्रचलन आदिकाल में नहीं हो रहा था।

3. जैन और जैनेतर काव्यों की भाषा - आदिकाल के पूरे कालखण्ड में जैन काव्य ही ऐसे काव्य है जिनकी भाषा भी प्रामाणिक है और रचनाकार भी। मूलत: जैन काव्य धार्मिक हैं परन्तु उनमें काव्य-तत्व एवं काव्य कौशल का अभाव नहीं है। आपको यह बताना अधिक समींचीन होगा कि काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से उन जैन रास काव्यों का महत्त्व भले ही अधिक न हो किन्तु तत्कालीन भाषा और काव्य शैली की पूरी परंपरा का अनुसरण वहाँ उपलब्ध होता है (रासो काव्य धारा)। विभिन्न विद्वानों के विश्लेषण के आधार पर इन जैन काव्यों में भाषा के निम्नलिखित विविध स्तर सहज देखे जा सकते हैं।

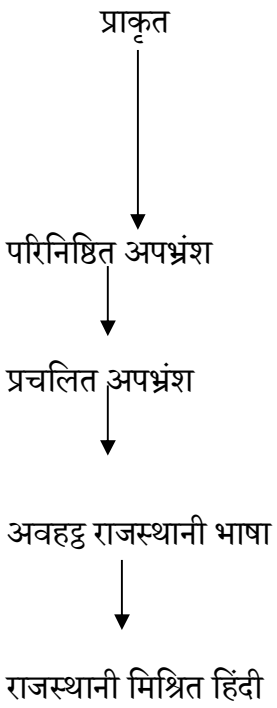

आपके ज्ञानार्जन के लिए यह बताना आवश्यक है कि जैन चरित काव्यों में धर्म पालन पर संदर्भ तो निहित है पर काव्यशास्त्रीयता का अनुसरण भी उनमें उपलब्ध है और इनकी परिनिष्ठित एवं लोक भाषा दोनों छोरों का स्पर्श करती है। जैनेतर काव्य में चारणकाव्य लिए जा सकते हैं। आलोच्य कालावधि में जैनसंतों-यतियों-मनुष्यों ने काव्य रचना प्रस्तुत की, वह प्राय: धर्मगत परंपरा में साधु जीवन का सर्जना पक्ष रहा है। यद्यपि कुछ जैन कवि राज्याश्रित भी रहे हैं ऐसे कवियों की चर्चा हम पिछली इकाईयों में कर चुके हैं। जैनेतर वे चारण कवि थे जो राज्याश्रय में अपने आश्रयदाताओं के मनोरंजन की पूर्ति के लिए अथवा साहित्य-कला प्रेम के

कारण राज्य संपत्ति थे। आप यह भी जान लीजिए कि राजस्थान में इस आलोच्य अवधि में चरण ही नहीं अपितु अन्य जातियों के कवि भी राजाश्रय में रहकर ऐसी रचनाएं दे रहे थे जो चरित काव्य का परंपरागत रूप लिए नहीं थी पर उनमें साहित्यिक अभिरूचियों, काव्य शास्त्रीय मूल्यों तथा सामाजिक समरसता का प्रभाव विद्यमान था।

बोध प्रश्न 2

1. अपभ्रंश और देशभाषा पर अपने परिचय दीजिए।

2 . अवहट्ठ और पुरानी हिंदी का स्वरूप स्पष्ट कीजिए।

3 . 'अपभ्रंश भाषा का काव्य' पर अपने विचार प्रकट कीजिए।

4 . भाषा की बहुरूपता का आशय स्पष्ट कीजिए।

5 . सिद्धों-नाथों की काव्य-भाषा पर प्रकाश डालिए।

6 . जैन काव्यों की भाषा पर विचार प्रकट कीजिए।

8.5 विशिष्ट आदिकालीन रचनाएं और उनकी भाषा

हिंदी साहित्य के आदिकालीन की भाषिक अभिव्यक्ति के संबंध में आप इस इकाई के आरंभ से अभी तक इतना तो भली प्रकार समझ चुके हैं कि आदिकाल न तो अपभ्रंश भाषा रचना-कर्म की अतिश्यता का द्योतक है और न तत्कालीन प्रचलित लोक भाषाओं से भिन्न रूपों का सम्यक रूप से या तुलनात्मक रूप से ऐतिहासिकता की मांग कर सकता है। इसका कारण साहित्य के अध्येता होने के कारण आप स्वयं ही जानते हैं कि रचना कर्म की समयावधि में भाषा, व्याकरण के बंधनों से परे रचनाकार अपने भावोत्कर्ष को शब्द देता है तथा तत्क्षण किस भाषा, किस शब्द का प्रयोग करेगा वह स्वयं नहीं जानता क्योंकि रचनाकार अवगत रूपों को लेखनी के स्रोत में आगे बढ़ाता है, भाषा स्वत: उसका काव्यरूप और संरचना का संस्कार बन आती है। **स्वयंभू कृत पउम चरिउ -** स्वयंभू अपभ्रंश और जैन धर्म में सन्निहित राम कथा की परम्परा का परिचय देते हैं। यद्यपि उनका मत स्पष्ट है कि उन्होंने पूर्व प्रचलित रामकथा परंपरा से प्रेरणा ग्रहण की है। वे इस ग्रंथ के प्रारंभिक भाग में प्रचलित राम कथा की महत्ता प्रतिपादित करते है –

ववसाउ तोवि णउ परिहरि हमि।

वरि रड्डाबद्धु कब्बु करनि॥

सामण्णे भास छुडु साण्डउ।

छुडु आगम खुत्ति काविघडउ

छुडू होंहू सुहासिय वयणाऊं ॥

गामिल्ल भास परिहरणाइं॥

काव्य रचना का प्रयोजन स्पष्ट करते हुए कवि स्वयंभू कहते हैं कि - मैं काव्य रचना के शास्त्रीय पक्ष को नहीं जानता हूँ फिर भी काव्य सर्जना के व्यवसाय को छोड़ नहीं पा रहा हूँ। प्रत्युत मैं रड्डा छंद में (छन्दों बद्ध रूप में) काव्य की रचना कर रहा हूँ। मेरी कामना है कि मैं सामान्य भाषा (देशी या ग्रामीण भाषा) में जो कुछ लिखूं वह जो कुछ कथन हो, वह सुभाषित हो जाए। आप इस कथन से स्वयंभू के विचार अवश्य समझ गए होंगे कि वे जिस भाषा में अपने रचनाकाल में रामकथा रच रहे हैं वह उस समय की परिनिष्ठित अपभ्रंश नहीं है, देशभाषा या ग्रामीणभाषा है। उक्त पंक्तियों में आगत शब्दों का अर्थ परिचय आपको अर्थ समझने की सुविधा देगा -

शब्दार्थ - ववसाउ = व्यवसाय (काव्य सर्जना)। तोवि णउ परिहर हमि = तब भी नहीं छोड़ रहा हूँ। वरि रडडाबद्ध= प्रयुक्त रड्डा छन्द बद्ध। कब्बु करनि =काव्य की रचना कर रहा हूँ। सामण्णे भास = सामान्य भाषा में। छुडु सावडउ = प्रयत्नपूर्वक कुछ। छुड आगम खुन्ति = कुछ आगम युक्ति। काविधडउ = रचना में कर रहा हूँ। छुडु घोन्ति सुहासियवरणाउ = वह वचन (कथन) सुभासित हो। गमिल्ल भास = ग्रामीण (देशी) भाषा। परिहरणाइ = छोड़ रहा हूँ।

आप समझ पाए होंगे कि किस प्रकार आदि काल की भाषा देशी से परिनिष्ठित होती है।

स्वयंभू के पउम चरिउ की भाषाभिव्यक्ति का मनन करने का अवसर आपको मिला ही है। अब आपके समक्ष अब्दुर्रहमान(अहददमाण) द्वारा लिखित सन्देशरासक की भाषाभिव्यक्ति का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है आदिकालीन भाषा की बहुरूपता का एक परिचय आप संदेश रासक में पायेंगे।

पउदडंउ पेसिजइ झाल अलकंतियइ।

भय भेसिय अइरावइ गयणि रिववंतियइ॥

रसहि सरस बब्बीहिय णिरूतिप्पंति जलि।

बयह रेह णहि रेहइ घवघण जंतितलि ॥

वर्षा ऋतु में विरहिणी नायिका कहती है कि - हे पथिक। जब विद्युत-ज्वाल आकाश में चमकती है तभी पगडंडी भी दिखलाई देती है, अन्यथा यह भय से ग्रस्त करने वाला ऐरावत जैसा कला आकाश भी मुझे आज जलाता है। इस वर्षा ऋतु में जलवर्षा के कारण तृप्त हुए पपीहे मग्न होकर मधुर शोर कर रहे हैं तथा बगुलों की पंक्तियाँ इन बादलों के नीचे शोभित होती हैं काव्य अर्थ के साथ शब्दों की अर्थाभिव्यक्ति दर्शनीय है -

यह अपभ्रंश भाषा का श्रेष्ठ उदाहरण होगा। स्वयंभू से चलकर अब्दुर्रहमान तक अपभ्रंश की इस अभिव्यक्ति में स्पष्टतः अंतर आभासित होता दिखाई देता है।

ऊपर स्वयंभू कृत वर्षा ऋतु वर्णन में भाषा अभिव्यक्ति का कौशल आप देख ही चुके हैं, अब्दुर्रहमान की वर्षाकालीन विरह दशा का भाषा कौशल परवर्ती कालीन काव्य के स्तर पर वर्षाकालीन काव्य के स्तर पर देख लीजिए -

णाय णिवउ पहरूद्ध फणिंदिहिं दह दिसिहिं।

हुइय असंचर मग्ग महं तं महाविसिहि॥

हरियाउल घरवलउ कयबिण महामहिउ।

कियउ भंगु अंगंनि अणंगिण मह अहिउ॥

विरहणी नायिक पथिक से कहती है कि इस वर्षाकाल में नागों एवं फणिधरों से दस दिशाओं के मार्ग अवरूद्ध हो गए हैं और अत्यधिक जल वर्षा के कारण सभी मार्गों पर आवागमन बंद हो गया है। सम्पूर्ण पृथ्वी (घरा मंडल) हरिताकुल होने के साथ ही कदम्ब पुष्पों की सुगंधि से परिपूर्ण हो गई है तथा कामदेव ने मेरे अंग प्रत्यंग को विरह के कारण अधिक अंगभंग कर दिया है। कवि विरहिणी की अभिव्यक्ति जिस रूप आप पढ़ चुके हैं। कथानान्तर में आपने कुछ विशेष पाया ही है, अब और देखा जा सकता है। शब्दार्थ के रूप में यह और देखा जा सकता है -

शब्दार्थ - णाय = नाग। णिवउ = निविड़। पहरूद्ध = पथ रोक कर के। फणिंरहिं सांप , फणिधर। दस दिसिहिं = दस दिशाएँ । असंचार मग्ग = मार्ग अवरूद्ध। महानिसिहि = महाविषधरो या भयंकर वर्षा जल से। मह = मध्य। तं =वहाँ । हरियाउल = हरिताकुल धरणी = धरती। अणंगिण = अनंग, कामदेव। मह = मह = मध्य। अहिउ = अधिक।

उपरिवर्णित दो रचनाओं की भाषा और उसमें अभिव्यक्ति कौशल का अंतर अभी-अभी आप पढ़ चुके हैं। वीसल देव रासो को आदिकालीन काव्य की आधार पुस्तक (सामग्री) के रूप में आचार्य शुक्ल ने स्वीकार किया था। जिस अपभ्रंश में स्वयंभू ने काव्य रचना प्रस्तुत की थी, उसे आप पढ़

चुके हैं फिर उसके परवर्ती रचनाकारों में सन्देशरासक की भाषाभिव्यक्ति का परिचय भी आप पा चुके हैं। बीसलदेव रासो की परवर्ती भाषाभिव्यक्ति प्रथम दो रचनाओं से पूर्णतः अंतर रखती हैं। यद्यपि संदेश रासक की भांति ही बीसलदेव रास संदेश काव्य है, वीरगाथा काव्य नहीं है - यह आपको स्मरण होगा ही। अब इस रासकाव्य की भाषाभिव्यक्ति का परिचय पाइए -

उठि उठि गवरि करिइ सिंणगार ।

णलि पइहरउ मोतिय कइ हार।।

नागफणी कइ तउ केति।

छोटी कसण पयउहर खींच।।

प्रीय म्हारउ चाल्हा उलगाई।

जु महं जीवन राखूं संचि।

सखियाँ राजमती (बीसलदेव-विग्रहराज की पत्नी) को संबोधित करती हैं - गोरी! तुम शीघ्र उठो और अपना श्रृंगार पूरा करो । तुम अपने गले में मोती का हार पहन लो तथा अपने कानों में तुम्हारे प्रिय सर्प के फन के आकार के आभूषण कर लो (यान अब तुम्हारे पति आ रहे है, अतः अपना श्रृंगार पूरा करो)। सखियाँ अब तक के ढीले और अस्त-व्यस्त वस्त्रों की ओर ध्यान देते हुए राजमती से कहती हैं कि तुम अपने स्तनों पर कंचुकी के बन्ध छोटे कर के उन्हें कस दो ताकि यौवन और उभर सके।

यह भी विरह काव्य है लेकिन उपर्युक्त का वाक्यांश पति के आगमन के समय की भाव एवं भाषा अभिव्यक्ति का उदाहरण आपके सामने रखता है। इससे वीसलदेव रास तक आते-आते भाषाभिव्यक्ति के अंतर को आप समझ गए होंगे । इससे आगत शब्दावली का अर्थ द्रष्टव्य है -

शब्दार्थ - गवरि = गोरी (राजमती)। करइ सिंण्गार = श्रृंगार करो। गलि पइहरउ = गल में पहनो। मोतिय कड हार = मोती का हार। नागफणी कइ तड़कलि =सर्प के फन के समान कर्णभूषण। छोटी कसण = छोटी कस, छोटी घर के कसना। पयउहर खीच = पयोधर पर खींचकर कंचुकी कासकर बांधो। प्रीय = प्रियतम। म्हारउ = हमारा। चाल्या डलगई = परदेश से चल दिया है। जु = जो। म्ह = मेरा। जीवन राखूं सींचि = यौवन संचित कर रखूं ।

कवि चंदबरदाई पृथ्वीराज चौहान के दरबारी था राजाश्रित कवि और बालसखा थे। उन्हें षटभाषा ज्ञाता के रूप रेखांकित किया गया है यानी वे अरबी, फारसी, संस्कृत, अपभ्रंश, राजस्थानी एवं हिंदी भाषाओं को पूरी तरह जानते थे। पृथ्वीराज रासो में उनकी इस भाषा बहुलता का परिचय मिलता है।

पृथ्वीराजरासो की भाषाभिव्यक्ति के उदाहरण के रूप में यहाँ शशिवृत्ता वर्णन (समय 25) का एक काव्यांश प्रस्तुत कर भाषाभिव्यक्ति का स्वरूप प्रतिपादित करना चाहेंगे। चंद शशिवृत्ता की वयःसंधि का उल्लेख करते है -

ससिर अंत आवन बसंत, बालह सैसव गम।

अलिन पंष कोकिल सुकंठ, सजि गुंड मिलत भ्रम।।

मुर मारूत मुरै चलै मुरै मुरि बैस प्रमानं।

तुछ कोपर सिस फुट्टि, आन किस्सोर रंगानं।।

आदिकालीन काव्य के आधार ग्रंथों में सम्मिलित पृथ्वीराज रासो की भाषा उपरिलिखित तीन कृत्तियों से भिन्न भाषा है। जिसमें राजस्थानी एवं हिंदी का मिश्रित स्वरूप परिलक्षित रहता है। पृथ्वीराज रासो का रचना के आरंभ में कवि ने कहा है -

उक्ति धर्म विशालस्य। राजनीति नवरस।

खट भाषा पुराणं च। कुरानं कथित मया ।।

इसमें कवि के अनुसार अपभ्रंश और अवहट्ठ की चाशनी में राजस्थानी, ब्रजी, फारसी भाषाओं का सम्मिश्रण है जो काव्य की सशक्त भाषागत अभिव्यक्ति बनकर हमारे सामने आता है।

आदिकालीन भाषा के क्रमागत विकास का स्वरूप आप देख ही चुके हैं। भाषा की दृष्टि में आधार ग्रंथों में गृहित चार ग्रंथों अपभ्रंश परवर्ती और आदिकालीन हिंदी की सहज अभिव्यक्ति मिलती है जिसमें लोकभाषा का जीवनतत्व और सरसता व्यापक रूप से उभरती है। यहाँ पर आपके समक्ष बेलि किसन रूकिमणी रे का एक काव्यांश प्रस्तुत करते हैं -

जम्पजीव नहीं आवतौ जाणे

जोवण जावणहार जण।

बहु बिलखी बीछड़ती बाला।

बाल संघाती बालपण।।

आगलि पित-मात रसन्ती अंमणि,

काम-विराम छिपाड़ण काज।

लाजवती अंगि एह लाज विधि,

लाज करन्ती आवै लाज।।

कवि रूक्मिणी की वयःसंधि का उल्लेख करते हैं कि रूक्मिणी अपने यौवन का आगमन देखकर उसे अस्थिर (शीघ्र विदा हो जाने वाला) मानकर अपने हृदय में व्याकुल होने लगी तथा अपनी बाल्यावस्था के साथी बचपन के बिछुड़ने के कारण अत्यन्त दुखी होती है। रूक्मिणी को अंग विकास के कारण माता-पिता के सामने जाते हुए लज्जा आने लगी है तथा स्वयं भी अनुभव करने लगी है, क्योंकि उसके अंगों में कामदेव बस गया है तभी वह उन्हें अपने माता-पिता से छिपाना चाहती है । भाषाभिव्यक्ति विषयक पाठ के अंतिम रूप में आपके सामने एक रचना का स्वरूप और रखते हैं। परमाल रासो (जगनिक कृत) परवर्ती काल की रचना है, उसका अपभ्रंश या अवहट्ठ भाषा से कोई संबंध नहीं है। उसकी भाषा का एक स्वरूप द्रष्टव्य है -

बारह वरिस लै कूकर जीए

औ तेरह लै जिए सियार।

बरस अठारह छत्री जीवे

आगे जीवन को धिक्कार।

यह भाषा आदिकाल की भाषिक सीमा की ओर संकेत करती है और स्पष्टतः यह संकेत देती है कि आदिकाल की भाषा की अभिव्यक्ति इस उक्त उद्धृत भाषा का रूप कभी नहीं ले सकती।

४.६ सारांश

प्रस्तुत इकाई को पढ़ कर आप -

- आदिकालीन काव्य की पूर्व-पीठिका को जान चुके होंगे
- आदिकालीन हिन्दी साहित्य की भाषिक संरचना के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त कर चुके होंगे.
- उस कालखंड के प्रमुख कवियों एवं उनके काव्य कि भाषिक-प्रवृत्ति का ज्ञान प्राप्त कर चुके होंगे
- अपभ्रंश एवं हिन्दी के अंतर-सम्बन्धों का ज्ञान प्राप्त कर चुके होंगे

8.7 शब्दावली

अपभ्रंश	:	मध्कालीन भारतीय आर्य भाषा
अवहट्ठ	:	अपभ्रंश जब प्रतिनिष्ठित भाषा का रूप ग्रहण कर चुकी तो अवहट्ठ लोक प्रचलित भाषा के रूप से काव्य-सर्जना का आधार बनी।
सिद्ध साहित्य	:	बौद्ध सिद्धों की साहित्य सर्जना विशेषकर चर्यापदों का रूप।
नाथ साहित्य	:	गोरख नाथ प्रवर्तित बानी और सबदी की रचना है।
जैन साहित्य	:	जैन मतावालाम्बियों द्वारा लिखित विभिन्न प्रकार का साहित्य

8.8 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.	रामचंद्र शुक्ल	हिंदी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा काशी
2.	बच्चन सिंह	हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रका.नई दिल्ली
3.	चंद्रधर शर्मा गुलेरी	पुरानी हिंदी, नागरी प्रचारिणी सभा काशी
4.	हजारी प्रसाद द्विवेदी	हिंदी साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रका.नई दिल्ली
5.	विजय कुलश्रेष्ठ	रासो काव्यधारा
6.	विजय कुलश्रेष्ठ	पृथ्वीराज रासो का लोकतात्विक अध्ययन

8.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. आदिकाल की पूर्वपीठिका पर प्रकाश डालिए तथा आदिकालीन भाषा के स्वरूप पर अपनी समीक्षात्मक व्याख्या दीजिए।
2. आदिकालीन काव्य भाषा का विस्तृत निरूपण कीजिए।